चार गांवों की कथा

डॉ. शची आर्य

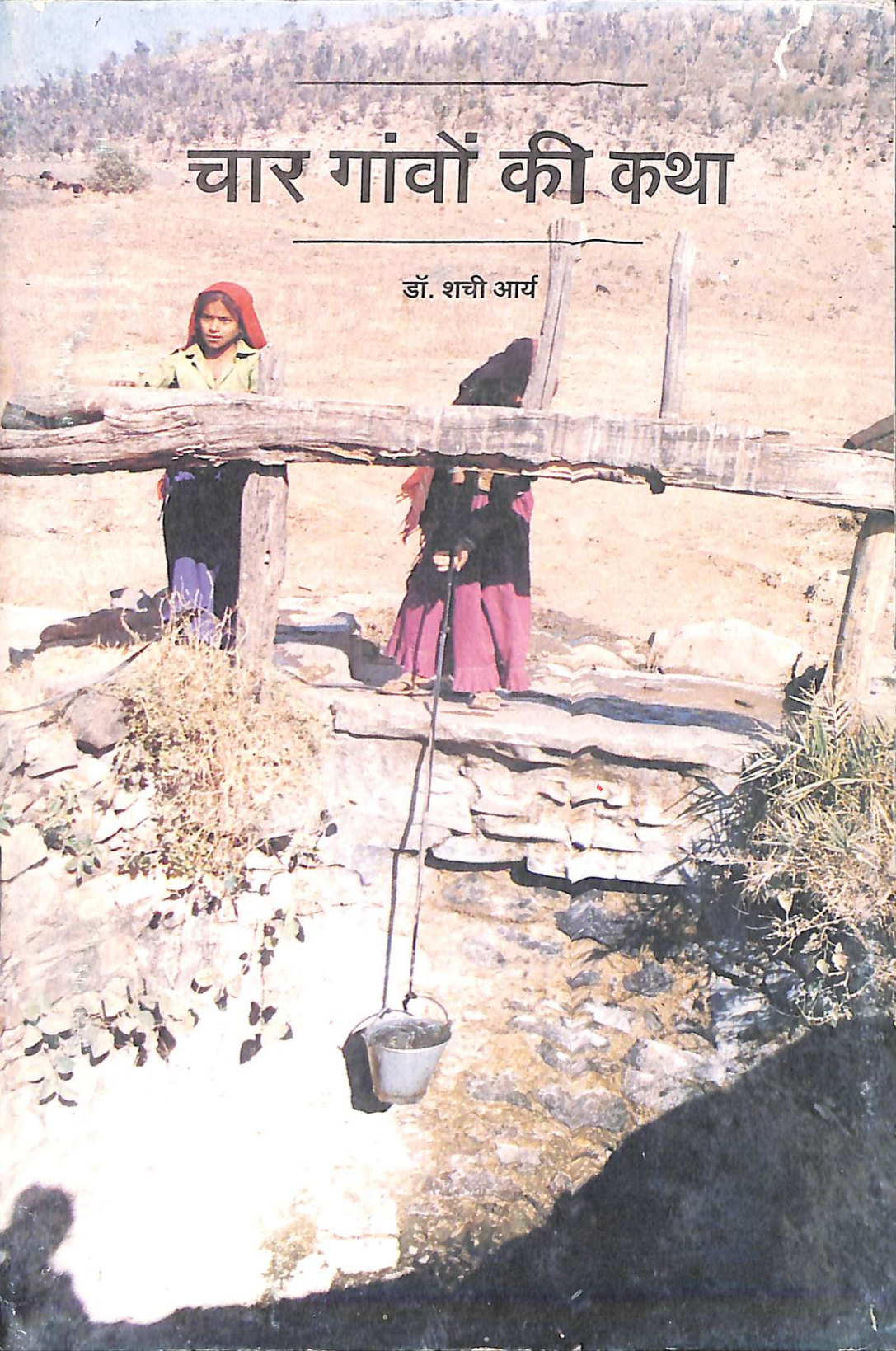

श्रमदान करती हुई महिलाएं

श्रमदान के बाद बातचीत

प्रस्तावना

तरुण भारत संघ ने पिछले पन्द्रह वर्षों में जल, जंगल, जमीन के संरक्षण संवर्धन का काम राजस्थान के अलवर-दौसा, सवाई माधोपुर, करौली, भरतपुर, धौलपुर, जयपुर तथा उदयपुर जिले के कुल मिलाकर साढ़े पाँच सौ गाँवों में किया है। यह भौगोलिक क्षेत्र लगभग साढ़े छः हजार वर्ग कि.मी. होगा। इसमें मुख्य तो अवलर जिला ही है जहाँ पर पन्द्रह सौ जोहड़ बने हैं, कुल मिलाकर दो हजार से अधिक बने हैं। इन कार्यों का प्रभाव अलग-अलग संस्थाओं, व्यक्तियों ने किया है। चार गाँव की कथा में डॉ. शची आर्य ने ऐसे गाँवों का चयन किया है जहाँ दो गाँवों में केवल महिलाओं के नेतृत्व में कार्य हुआ है। दो गाँवों में पुरुषों के नेतृत्व के कार्य हुआ। चारों गाँवों में जातिगत समीकरण, गाँव की बनावट, निर्णय प्रक्रिया सभी कुछ भिन्न है।

लीलूंडा गाँव वन गुर्जरों का गाँव है। यहाँ दड़की माई के नेतृत्व में कार्य हुआ। इस गाँव में केवल एक ही कार्य जलसंरक्षण का हुआ। इसी से दूसरे काम जैसे जंगल संरक्षण, महिला सबलीकरण आदि स्वयं होने लगे। इस गाँव में मूल्यांकनकर्ता को पहुँचने में ही बहुत कठिनाई हुई थी। दुर्गम जंगल में रहने वाले समाज जल-जंगल को कैसे देखते हैं ? कैसे इसका प्रबन्ध करते है ? वहाँ समाज में किस प्रकार के पूर्वग्रह काम करते हैं। इसका अच्छा खुलासा किया गया है।

कालीखोल अनुसूचित जाति बाहुल्य बलाई समाज के लोग रहते हैं। यहाँ भी चन्द्री बलाई के नेतृत्व में कार्य हुआ। ये अपने काम के कारण इस गाँव की कहानी से स्पष्ट होता है, कि इस गाँव में छोटे-छोटे काम नये किसान बने बलाई व गुर्जर परिवारों के खेतों पर ही हुआ है। लेकिन काम की शुरूआत तो सार्वजनिक कार्यों से ही हुई थी। जोहड़ निर्माण व जंगल बचाने के संकल्प गांव का पानी गांव में गांव का जंगल गांव के लिए। अब धीरे-धीरे यह संकल्प खेत का पानी खेत में रोकने तक पहुँच गया है।

छोटे-छोटे नये किसानों ने अपने खेत संवारने शुरू कर दिये है। अब यहाँ भरपूर अनाज होने लगा है। सूखे कुएं सजल हो गये हैं। पलायन रुका है। यह सब महिलाओं की पहल से सम्भव हुआ है। यह जानकर बहुत अच्छा लगा। इसके लिए चन्द्री बलाई, के साथ-साथ कालीखोल गाँव की सभी महिला-पुरुषों को बधाई देता हूँ।

खरखड़ा राजपूत जाति बाहुल्य गाँव होने के नाते महिलाओं को समाज के काम करने के अवसर कम दिखाई दिये। यहाँ काम पुरुषों के नेतृत्व में हुये। लेकिन पुरुषों में शराब का चलन बहुत अधिक होने के कारण महिलाओं का कष्ट और अधिक बढ़ता था। महिलाओं ने पर्दे में रहकर भी शराबबन्दी का दबाव यहाँ पुरुषों पर बनाया। परिणामस्वरूप पाँच गाँवों में पूर्ण शराबबन्दी हुई। यहाँ महिलाएं अनोखा उदाहरण बनी है। इन्होंने पुरुषों से बिना संघर्ष किये, प्रेम से शराब छुड़ाई ! यहाँ ऊपरी तौर पर देखने से महिलाओं पर कुछ असर नहीं दिखाई देता है। रुझान सत्य है। लेकिन तरुण भारत संघ के यहाँ के राजपूत युवाओं को जोहड़ बनाने, जंगल बचाने में जो रुझान बनाया। उसके परिणामानुसार युवाओं की श्रमनिष्ठा बढ़ी, तब शराब जैसी बुराई को छोड़ने की स्वयं ग्रामवासियों ने ही तैयारी की थी। इस तैयारी में महिलाओं का असंगठित तथा संगठित दोनों ही तरह का प्रयास काम

कर रहा था। इसलिए शराबबन्दी के काम के लिए, मैं यहाँ की महिलाओं को ही बधाई देना चाहता हूँ। इस पूरी प्रक्रिया को राजेश रवि के नेतृत्व में जिनेश जैन, राकेश फौजदार, दयाराम दोनों (भरतपुर) प्रहलादसिंह (खरखड़ा निवासी) पाँच सदस्यीय मिशन (दल) ने गहराई से समझा है। इसीलिए राजेश रवि की रिपोर्ट को इस कथा में अलग से जोड़ा गया है।

पथरोड़ा मेव बाहुल्य गाँव है। यहाँ की महिलाएं भी पर्दानशीं हैं। लेकिन जोहड़ बनाने व जंगल बचाने दोनों ही को कुदरत के काम मान कर इन कार्यों से महिलाएं प्रसन्न हैं। इस कार्य में लगने वाले धन को ये सैयद का धन मानकर इसमें पूरी ईमानदारी से काम करती है।

सुलेमान के साथ-साथ इनकी पत्नी भी बदल रही है। सुलेमान से गलती होने पर उसे सुधारने के लिए कहती है। यहाँ महिलाओं की सक्रियता स्पष्ट दिखाई देती है। लीलूंडा-कालीखोल की तरह महिला नेतृत्व यहाँ उभरेगा जो अपने गाँव की खुशहाली एवं महिला सबलीकरण करेगा। यह बात राजेश की रपट में स्पष्ट दिखाई देती है। डॉ. शची आर्य ने पथरोड़ा-खरखड़ा गाँव में खेती-पानी में आयी समृद्धि का वस्तुपरख अध्ययन किया है। पुरुषों की मानसिकता का भी सरल-स्पष्ट चित्रण किया है। महिलाओं के कष्ट को ये बहुत अच्छी प्रकार समझती है। इसी लिए महिलाओं की समृद्धि व सशक्तिकरण हेतु बहुत से सुझाव भी दिये हैं।

इस पुस्तक के सुझावों को मद्देनजर रखकर ही हमने अगले तीन वर्षों की योजना में महिला पंच-सरपंचों तथा कुछ चुने हुए पुरुष सरपंचों को जल-जंगल संरक्षण की कुशलता-क्षमता बढ़ाने का प्रशिक्षण कार्य शुरु किया है।

मैं सबसे पहले तो अपने कार्य क्षेत्र की उन सब महिलाओं को धन्यवाद एवं आभार प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होंने संगठित होकर या व्यक्तिगत रूप में अपने कार्यों को आगे बढ़ाया। दड़की-चन्द्री ने जो कार्य शुरू किया है वह सतत् आगे बढ़ेगा ऐसी शुभकामनाएं।

खरखड़ा-पथरोड़ा गाँव की सब महिलाएं संगठित होकर अपने गाँव में आगे भी शराबबन्दी बनाये रखें तथा ढाकपुरी, निठारी, चौमू, श्यामगंगा आदि आस-पास के गाँव की महिला-पुरुषों में भी शराबबन्दी की तैयारी करायें। ब्रजराज, सुलेमान, जुम्माखां, प्रहलादसिंह आदि सब को भी धन्यवाद ! डॉ. शची आर्य के हम आभारी हैं, इन्होंने अपना समय लगाकर पूरी तटस्थता के साथ अध्ययन कार्य किया। समय कम होने के कारण कुछ खास विषय छूट गये हैं, उन्हें राजेश रवि, जिनेश जैन, अलवर के पत्रकार राकेश फौजदार, फोरेस्टर दयाराम (इंजिनियर) दोनों भरतपुर तथा प्रहलादसिंह जी (खरखड़ा के ग्रामवासी) की रपट ने पूरा कर दिया है। हम इनके आभारी हैं। लीलूंडा, कालीखोल, खरखड़ा तथा पथरोड़ा की समस्त जनता को बधाई देने के साथ-साथ जगदीश, गोपाल, मिश्रीलाल, श्रवण रामदयाल को बधाई देना चाहते हैं। क्योंकि ये अपना घर-गाँव छोड़कर इन गाँवों में जाकर रहे, काम शुरू कराने में गाँव का साथ एवं सहयोग दिया। यह सहयोग अब सफलता में बदल गया है।

राजेन्द्रसिंह
महामंत्री, तरुण भारत संघ

चार गांवों की कथा

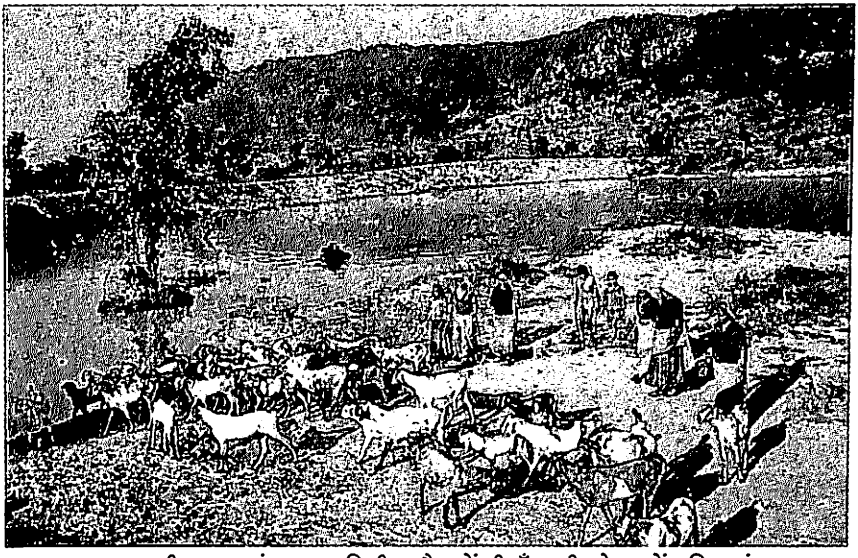

ग्राम लीलूण्डा, पंचायत समिती उमरैण में ढीमाँवाली जोहड़ में महिलाएं बकरियों व भैंसों को पानी पिलाते हुए

एक

लीलूंडा (पंचायत माधोगढ़) सरिस्का कोर क्षेत्र

'रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून' का अर्थ हम सब लोग अपने-अपने ढंग से करते समझते आये हैं। पर इसका सही अर्थ तो वास्तविक जीवन-स्थितियों में ही समझ में आता है। खासकर उन जीवन-स्थितियों में जहां एक-एक बूंद पानी के लिए, खुद की और मवेशियों की रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए भी औरतों को रात-दिन खटना पड़ता है - क्योंकि घर और मवेशी की पानी की जरूरत पूरी करना औरतों की ही जिम्मेदारी होती है। खेती के लिए पानी की व्यवस्था करना पुरुषों पर है, पर जिन गांवों की चर्चा हम कर रहे हैं वहां खेती-बाड़ी तो लगभग असंभव ही है। पशुपालन ही जीवन का एकमात्र आधार होने के कारण पानी लाने का पूरा जिम्मा औरतों का है तो पानी की उपलब्धता का प्रभाव भी औरतों के जीवन पर ही सीधे-सीधे पड़ता है। कई दृष्टियों में एक-दूसरे से भिन्न दिखने के बावजूद पानी का अभाव और

पशुपालन जीवन का मुख्य आधार होने के कारण ये चारों गांव एक से हैं, पर अन्य हजारों-हजार गांवों से अलग।

बहुत दिन नहीं हुए जब लीलूंडा और कालीखोल में तथा खरखड़ा और पथरोड़ा में पानी का न होना एक भयानक दुःस्वप्न का रूप धारण कर चुका था। लोगों की बस एक ही कामना, एक ही प्रार्थना थी कि पानी मिल जाये। जरूरत भर पानी। प्रकृति की गोद में बसे, आधुनिक चमक-दमक से एकदम दूर और तथाकथित विकास की अवधारणा को अंगूठा दिखाते हुए, अनेक अभावों से जूझते-संघर्ष करते सुखी एवं संतुष्ट कैसे रहा जा सकता है, यह देखना और सीखना हो तो लीलूंडा के लोगों से मिल लेना चाहिए। यहां जीवन से यदि कोई अपेक्षा है और कोई भी आकांक्षा है तो वह है पानी, और सिर्फ पानी।

भर्तृहरि से तीन-साढ़े-तीन किलोमीटर की सांस उखाड़ देनी वाली चढ़ाई और वह भी घने जंगल से होकर। और फिर वैसा ही ढलान, जहां चढ़ाई

लीलूंडा की चढ़ाई

खत्म होकर ढलान शुरू होता है वहां है देवता का थान। संकेत इस बात का कि थोड़ा सुस्ता लीजिए। दुर्गम चढ़ाई पर आप फतह कर चुके हैं। इस तरह आप पहुंचते हैं तलहटी में बसे लीलूंडा गांव, जो सैकड़ों साल से अपनी जगह पर है और जहां पहुंचने का एकमात्र रास्ता वही है जिसका ऊपर जिक्र किया गया है - कोई टूटी-फूटी पगडंडी तक नहीं है। यहां के बाशिंदे प्रकृति की आत्यंतिक

मार से बचने के लिए अपने व अपनी मवेशी के जीवन को सुनिश्चित बनाये रखने के लिए यहां से पलायन कर नीचे भर्तृहरि के गांवों में चले जाते थे, दो महीने बाद पुनः लौट आने के लिए। यहां से स्थायी तौर पर निकल कर कहीं दूसरी जगह ठौर-ठिकाना ढूंढ़ने का विचार मात्र तक उनके दिमाग में नहीं आया - घोर दुर्दिनों के दौरान भी नहीं। लगभग साठ साल की होने पर भी यहां की सबसे सक्रिय महिला कार्यकर्ता **दड़की माई** बताती है कि जब से वह शादी होकर आयी है उसने गांव को ऐसा ही देखा-पाया है।

इस गांव में जोहड़ बने अभी एक ही साल हुआ है। 15 घरों के इस ढाणीनुमा गांव में पानी ने जैसे चेहरे की रंगत ही बदल डाली है। खोयी हुई रौनक वापस ला दी है। वे तमाम मुश्किलों, अभावों के बावजूद अपने भविष्य को लेकर बड़े आशान्वित दिखते हैं। इस जोहड़ के बनने की भी एक कहानी है जो कपोल-कल्पित किस्से-कहानियों जैसी विस्मयकारी और रोमांचक है।

दड़की माई आज अपनी पहलकदमी, दूरंदेशी और दूसरों को अपने साथ ले आने की क्षमता के कारण ही नहीं बल्कि कड़ा परिश्रम करने की अपनी क्षमता और संगठनात्मक समझ के कारण भी महिलाओं की ही नहीं पूरे गांव की प्रवक्ता बन गयी है। नेता बन गयी है। क्रास्का गांव में जब तरुण भारत संघ के सहयोग से जोहड़ बनाने का काम चल रहा था तभी **दड़की माई** को इसकी

ग्राम लीलूण्डा तहसील अलवर के ढीमॉवाले जोहड़ की पाल पर खड़ी हुई ''दड़की माई''

खबर लग गयी और जब जोहड़ ने क्रास्का के लोगों के जीवन को बदलना शुरू कर दिया, तो उसके मन में भी एक हूक उठी - काश, मेरे गांव में भी ऐसा हो जाये ! उसने **तरुण भारत संघ** के बारे में जहां-जहां से संभव था, जानकारी इकट्ठी की। उसे पता लगा कि इस संस्था ने जोहड़, एनीकट, चैकडैम वगैरह बनाकर एक बड़े इलाके में जल संचय का जबर्दस्त काम किया है। उसे यह भी पता चला कि संस्था गांव वालों की पहलकदमी पर ही इन कामों को हाथ में लेती है - वह भी तब, जब गांव वालों की भागीदारी (कुल खर्चे का 25 प्रतिशत अंशदान/श्रमदान) के बारे में पूरी तरह आश्वस्त हो जाती है।

दड़की माई के मन में **तरुण भारत संघ** के कार्यकर्ताओं से संपर्क करने की बात आयी, पर संकोच ने दबोच लिया। कहीं उन्होंने मदद करने को मना कर दी तो ! यों वह पंचायत के पास इस काम के संबंध में जा सकती थी पर सरकारी विभागों और कारिंदों पर गांव वालों को विश्वास ही नहीं रह गया था। उसने बहुत सोच-विचार किया और एक दिन बिना किसी को कुछ भी बताये हुए वह सीधे अकेली चल पड़ी और **तरुण भारत संघ** के आश्रम (भीकमपुरा) पहुंच गयी। उसने अपनी व्यथा-कथा सुनायी और यह भरोसा दिलाया कि काम शुरू होने का फैसला होते ही सारा गांव सहयोग करेगा, यह जिम्मा उसका है। बात बन गयी। **तरुण भारत संघ** ने गांव की कथा सुनकर और **दड़की माई** का आत्मविश्वास देखकर जोहड़ का काम हाथ में ले लेने का फैसला कर लिया।

ग्राम लीलूण्डा में डॉ. शची आर्य महिलाओं से बात करते हुए

मजे की बात यह है कि जब **दड़की माई** ने गांव वापस पहुंच कर यह खुशखबरी दी तो किसी को विश्वास ही नहीं हुआ। उसने किसी से भी (अपने घर वालों तक से) इसकी चर्चा यह सोच कर नहीं की थी कि काम नहीं बना, तो गांव में हेठी हो जाएगी। **दड़की माई** गांव की न जाने कब से चली आ रही कष्ट-गाथा को सुनाते हुए कहती है कि जोहड़ बनने से पहले पशुओं को पानी भी कुएं से खींचकर पिलाना पड़ता था। गर्मी में कुआं सूख जाता था तो गांव खाली कर देना पड़ता था। युवती **नारंगी** बीच में टोककर कहती है - जब तक कुएं में पानी रहता था, तो हमें कई बार तो रात-रात भर कुएं से पानी खींच-खींच कर ढोरों को पिलाना पड़ता था। अन्य महिलाएं भी इस बात की पुष्टि करती हैं - जोहड़ बनने से पहले हमने यह जाना ही नहीं था कि आराम किसे कहते हैं। सारे गांव की आजीविका की धुरी पशु ही हैं, इसलिए महिलाएं उनकी जरूरतें पूरी करने के लिए रात-दिन खटती थीं। उनका जीवन एकदम यंत्रवत् हो गया था। मशीन जैसा। **तरुण भारत संघ** से लौटने के बाद **दड़की माई** ने गांव के सभी स्त्री-पुरुषों को इकट्ठा किया और **तरुण भारत संघ** की कथा सुनायी। यह भी बताया कि किस तरह और कैसे गांवों की कायापलट ही कर दी है, इस संस्था ने जोहड़ बनवाकर। बात महिलाओं की समझ में पहले आयी।

जोहड़ की मिट्टी खोदते हुए

जो कष्ट वे रात-दिन भोगती थीं उससे मुक्ति का सपना उनकी आंखों में तैरने लगा और यही कारण था कि जोहड़ का काम शुरू होने से पहले ही उन्होंने अपने सहयोग - श्रमदान व खर्चे में अपने अंशदान - की घोषणा कर दी।

जोहड़ का काम शुरू हुआ तो जन-सहभागिता पूरी तरह मूर्तिमान् हो उठी। पाल बनाने व मिट्टी फैलाने का काम स्त्री-पुरुषों ने मिलकर किया। वहां काम कर रहे बाहर के (ट्रैक्टर वाले - गधे वाले) लोगों के खाने-पीने की व्यवस्था भी महिलाओं ने बड़े उत्साह व मुस्तैदी के साथ की। **दड़की माई** ने अकेले अपने बूते पर मिट्टी ढोने के लिए गधों का इंतजाम किया। उसके दृढ़-संकल्प, कठिन परिश्रम व अद्‌भुत संगठन-क्षमता ने असंभव सी दीखती चीजों को भी एकदम आसान और सहज बना दिया। हर जगह इक्का-दुक्का लोग ऐसे होते ही हैं जो प्रारंभ में इस तरह के रचनात्मक काम को समझ नहीं पाते और इसलिए उसके प्रति तटस्थ बने रहते हैं। लीलूंडा की **दाखड़ी** भी ऐसी ही थी। दरअसल इस तरह के कामों के लिए सरकार पर निर्भरता की आदत भी स्थानीय स्तर पर सामुदायिक पहल व भागीदारी में अड़चन डालती है। पर जल्दी ही ऐसे लोगों को अपनी गलती का एहसास हो जाता है। तब नेतृत्व की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह उन लोगों को काम में भागीदार बनाये। कई बार ऐसे में यह नाक का सवाल बन जाता है कि जो शुरू में साथ नहीं आये बाद में उन्हें शामिल

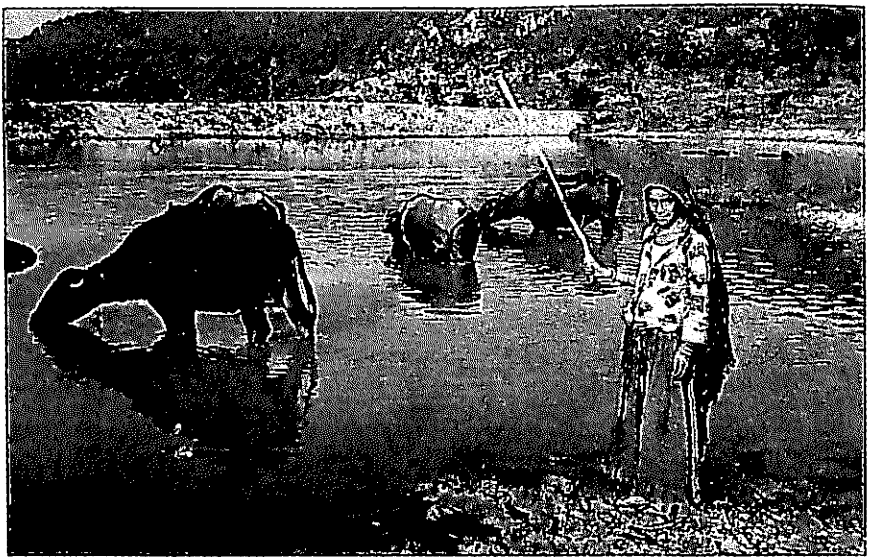

ग्राम लीलूण्डा में ढीमॉ वाले जोहड़ में भैंसों को पानी पिलाते हुए

करके उन्हें श्रेय क्यों दें ? बेहद मेहनती और सबके सम्मान की पात्र **दड़की** से भी यही चूक हो गयी। **दाखड़ी** के मन में अभी भी यह फांस चुभी हुई है कि बाद में जब उसने सहयोग का प्रस्ताव किया, तो उसे ठुकरा क्यों दिया गया।

जोहड़ निर्माण से परिवारों की आर्थिक स्थिति पर जबर्दस्त सकारात्मक प्रभाव पड़ा। पशुओं के लिए चारे-पानी की किल्लत दूर हुई तो पशुओं का दूध बढ़ गया। गांव का रास्ता ऐसा दुर्गम कि दूध बेचा तो जा ही नहीं सकता। इसलिए खोआ (मावा) बनाकर बेचने का काम करते हैं यहां के लोग। कष्ट के समय में भी यही करते थे, अब भी यही करते हैं। तब दूध कम होता था तो खोआ कम निकलता था। अब दूध ज्यादा होने लगा है, तो खोआ भी ज्यादा निकलने लगा है। जिसके पास जितने पशु, उसी अनुपात में उसकी आय बढ़ गयी है। गांव समृद्ध है। संतुष्ट है। हरेक परिवार इतना कमा लेता है कि हारी-बीमारी, शादी-ब्याह, जणी-जापा बड़े आराम से हो जाता है।

जोहड़ ने महिलाओं के जीवन पर बेहद असर डाला है। खासकर इस मायने में कि उन्हें न केवल पानी खींचने के जानलेवा काम से मुक्ति मिल गयी है बल्कि इस रूप में भी कि जीवन में पहली बार उन्हें खाली समय मिलने लगा

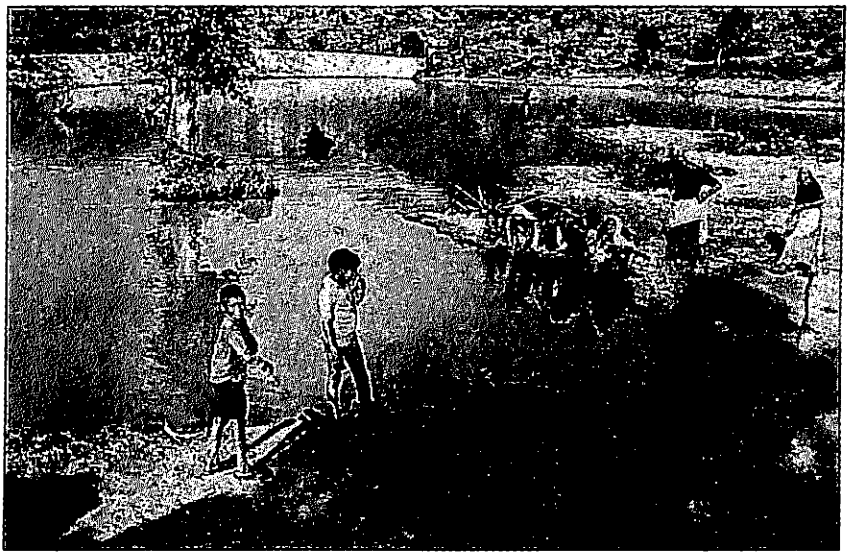

ग्राम लीलूण्डा में ढीमाँ वाले जोहड़ से महिलाएं पानी पीते हुए

है। जिन्होंने आराम कभी जाना ही नहीं था वे अब आराम करने लगी हैं। भविष्य में इस खाली समय में कुछ ऐसे वैकल्पिक काम शुरू किये जा सकते हैं, जिससे उनके खाली समय का सदुपयोग तो हो ही, उनके निजी आय के स्रोत भी बढ़ सकें। कंडे इस गांव की महिलाएं नहीं थापती क्योंकि जरूरत लायक ईंधन जंगल से मिल जाता है। सूखी लकड़ियों के रूप में, बिना पेड़ को किसी तरह का नुकसान पहुंचाए। उनके स्वास्थ्य पर इसका सीधा-सीधा असर पड़ा है। दूध, दही, छाछ की इफरात है। गांव की सभी महिलाएं दूध पीती हैं। छाछ का अधिकांश भाग तो जानवरों को ही पिला दिया जाता है।

महिलाएं अपनी रोजमर्रा की जरूरतों के मुताबिक लौकी, तोरई, कद्दू व बेल वाली अन्य कुछ सब्जियां उगाने लगी हैं। बाकी सब चीजें अनाज, बिनौला, मेथी, गुड़ तो नीचे से यानी बाजार से ही आता है। यहां की महिलाओं ने कभी खरीद-फरोख्त नहीं की इसलिए वे पैसे-धेले का हिसाब-किताब भी नहीं कर पाती हैं। पर पुरुष लाया हुआ पैसा उनके हाथ में दे देते है। खर्च के मामले में उनसे राय ली भी जाती है। और मानी भी जाती है।

जिले में साक्षरता अभियान चल चुका है, पर इस गांव को उसने छुआ तक नहीं हैं। शिक्षित-साक्षर के नाम पर पूरे गांव में एक देवकरण है जो पांचवीं पास है। बाकी सारा गांव निरक्षर है।

देश भर में विकास के जिन रूपों की चर्चा जोर-शोर से चलती रहती है उनमें से एक का भी लाभ यहां के लोगों को नहीं मिला है। शिक्षा, परिवार कल्याण, टीकाकरण सब कुछ से अछूते हैं यहां के लोग। सच तो यह है कि किसी भी विभाग के किसी कारिंदे के पांव इस गांव में कभी पड़े ही नहीं। जंगलात के कारिंदे जरूर आ जाते हैं अपनी जेब गर्म करने की फिराक में। उन्हें रिश्वत नहीं मिल पाती तो गांव वालों को जंगल काटने के फर्जी मुकदमों में फंसा देते हैं। पकड़ कर ले जाते हैं। जबकिं सच्चाई यह है कि गांव वाले पेड़ों को काटना तो दूर उनकी टहनियों तक को नुकसान नहीं पहुंचा सकते। **लकड़ी काटकर बेच सकने की सुविधा होती, तो रोजाना दूध बेचकर ही अपनी आय न बढ़ा लेते। वैसे भी घना जंगल अपने आप में इस बात की गवाही देता है कि उसे गांव वालों से कोई खतरा नहीं है।** हमारा देश भर का

अनुभव यह बताता है कि जंगल के असली दुश्मन जंगलात वाले हैं। वे चाहते हैं कि पेड़ काटने वाले पैदा होते रहें और उन्हें उनका हफ्ता मिलता रहे।

इस गांव के लोगों का जीवन कितना कठिन है इसका अंदाज इस बात से लगाया जाता है कि हारी-बीमारी में या जापा बिगड़ जाने पर उन्हें किस तरह की कठिनाई उठानी पड़ती है। बीमार को खाट पर डालकर दो लोग खाट को उठाकर भर्तृहरि तक ले जाते हैं। जंगल का रास्ता इतना संकरा और पथरीला है कि चार आदमी खाट को उठाकर चल ही नहीं सकते। विकट पथरीली चढ़ाई और ढलान पार करना मरीज की हालत को तो और खराब कर ही देता होगा, तीमारदारों को भी निश्चित तौर पर बीमार बना देता होगा। वहां से जीप करके अलवर जाते हैं। कुछ बीमारियों, खास तौर पर मानसिक बीमारियों में (उनकी भाषा में बेवकूफ हो जाना), वे बीमार को अस्पताल न ले जाकर गंडा-ताबीज, झाड़-फूंक कराने में विश्वास रखते हैं। कुछ मामलों में झाड़-फूंक व इलाज दोनों साथ कराते हैं। जैसे पीलिया हो जाने पर या केवल दवाई से तबीयत ठीक न हो पाने की स्थिति में।

लेकिन दिलचस्प बात यह है कि गांव वाले इन सब कठिनाइयों की चर्चा सहज रूप से करते हैं - **आक्रोश, असंतुष्टि या हताशा के भाव से नहीं। न तो सुनने वाले के मन में करुणा पैदा करने के लिए और न शहादत के भाव से। उनके चेहरे पर एक खास किस्म की संतुष्टि और प्रसन्नता का भाव नजर आता है। कामना सिर्फ यह है कि जोहड़ के जो लाभ उन्हें मिले हैं वे बारहों महीने बने रहें ताकि वे विपरीत प्राकृतिक परिस्थितियों के बावजूद बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, दवा-दारू और उनके भविष्य को बनाने के काम पर ध्यान दे सकें। महिलाओं को कुछ और उपयोगी कामों में लगा सकें।** लगभग दो फर्लांग नीचे स्थित कुआं सूखे नहीं। गर्मी में पानी उसमें टूटे नहीं जिससे उन्हें दो महीने के लिए भी गांव खाली न करना पड़े। क्योंकि पीने का पानी अभी भी उस एकमात्र कुएं से ही आता है।

ग्राम कालीखोल, पंचायत समिती उमरैण में महिलाओं के साथ मीटिंग

दो

कालीखोल (पंचायत भगतपुरा) सरिस्का बफर क्षेत्र

अकबरपुर से करीब 10 किलोमीटर दूर, पहले कच्चे और फिर पठारी पहाड़ी रास्ते पर चलकर घुसते हैं जंगल में। फिर पार करते हैं एक बड़े से नाले को और बेरा और बीणक नामक घने जंगल के स्थानों को पार करते हुए पहुंचते हैं कालीखोल। अलवर-जयपुर मार्ग पर सड़क से बहुत दूर तो नहीं है कालीखोल, पर वहां पहुंचने का जैसा रास्ता है, उसमें जीप तो जा सकती है जैसे-तैसे, पर कोई और नियमित साधन नहीं है जिसका सहारा लेकर गांव के या कस्बे के लोग कभी भी वहां पहुंच सकें। इससे गांव में रहने वाले लोगों की कठिनाइयां बढ़ती ही हैं, क्योंकि बहुत से ऐसे आकस्मिक कारण बन जाते हैं, जब सड़क तक न पहुंच पाना दुर्भाग्य का सूचक बन जाता है।

करीब दो सौ घरों का गांव है कालीखोल। कुल जनसंख्या लगभग ढाई हजार। दो हिस्सों में बंटा हुआ। एक हिस्से में करीब सौ घर गूजरों के हैं, तो

दूसरे हिस्से में लगभग उतने ही घर हरिजनों के। गूजरों वाला हिस्सा तुलनात्मक रूप में सम्पन्न है। पशुपालन के बूते पर। एक-एक परिवार के पास 30-40 भैंसें हैं। हरिजनों के पास साधन नहीं हैं इतने पशु जुटाने के। किसी के पास एक भैंस है, किसी के पास दो। जाहिर है इतने भर से आजीविका का ठोस आधार नहीं बनता। उनके पास प्रायः तीन-चार बीघा खेती की जमीन भी है। पर असिंचित होने के कारण जो उपज मिलती है, वह भी परिवार की जरूरतों के हिसाब से पूरी नहीं पड़ती। और रही-सही कसर जंगली जानवर पूरी कर देते हैं, खड़ी फसल चौपट करके। रात-भर खेतों की रखवाली करके भी कोई खास फायदा हाथ नहीं लगता। अतः उन्हें मजदूरी करने बाहर जाना पड़ता है। हरिजन इस बात को स्वीकार भी करते हैं कि वे गूजरों जितने निडर व साहसी भी नहीं हैं। गूजर रात-दिन हर मौसम में अपने पशुओं के साथ जंगल में रह लेते हैं, हम नहीं रह सकते। इसका भी आय पर फर्क पड़ता है। दोनों जातियों के बीच ऐसा भाईचारा है जिसे उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। पर आर्थिक स्थिति के आधार पर देखा जाये तो एक गांव के भीतर दो गांव नजर आते हैं - एक खुशहाल है और दूसरा अपनी स्थिति व नियति से जूझता-सा लगता है।

गांव की सहभागिता से **तरुण भारत संघ** ने छोटे-बड़े 20 जोहड़ व एनीकट बनाये हैं, जिसके परिणामस्वरूप कुओं का जलस्तर भी बढ़ा है तथा

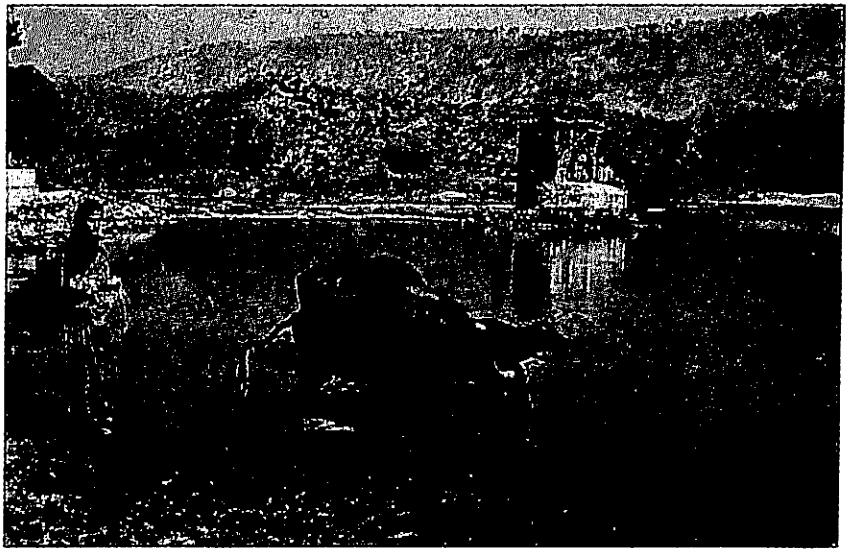

ग्राम कालीखोल पंचायत समिती उमरैण में ओदी वाला जोहड़ में भैंसों को पानी पिलाते हुए

साल में कम से कम 9 महीने जोहड़ों से पशुओं के लिए भरपूर पानी मिल जाता है। हर साल गर्मी में हरिजनों के कुएं का पानी भी टूट जाता था। फिर उन्हें पानी लेने गूजरों के कुएं तक जाना पड़ता था जो बहुत दूर है। इस गर्मी में वह भी टूटा नहीं। कुएं से पानी खींच कर स्वयं की व पशुओं की जरूरत पूरी करना बड़ी मशक्कत का काम है। पर फिर भी पानी लेने दूसरे कुएं पर दूर जाने का महिलाओं का श्रम बचा है। 1995 में जोहड़ों का काम शुरू हुआ। उससे पहले यह सिलसिला साल-दर-साल चलता रहता था। यह तो गनीमत थी कि गूजर अपने कुएं से हरिजनों को पानी लेने देते थे। अभी जोहड़ों का काम जारी है। जितना हुआ है, उससे ही हालात में जो सुधार हुआ है उसे देख कर लगता है कि जब काम पूरा हो जाएगा तो पानी की किल्लत एकदम खत्म हो जाएगी। जोहड़ों में बारहों महीने पानी उपलब्ध होगा और हरिजन भी खुशहाली की राह पर चल पड़ेंगे।

कालीखोल में जोहड़ों का काम शुरू करवाने में **तरुण भारत संघ** के कार्यकर्ता **जगदीश गूजर तथा मिश्रीलाल** की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही है। जब रईका गांव में काम चल रहा था, उन्हें कालीखोल के हालात देखने-जानने का मौका मिला। उन्हें लगा कि इस गांव में काम शुरू होना ही चाहिए। यह काम के लिए उपयुक्त स्थान है। उन्होंने यहां के लोगों से संपर्क साधने की कोशिश की तो पता लगा कि पुरुष प्रायः शराब की लत के शिकार हैं उनसे गंभीर बात नहीं हो सकती। उन्होंने राजगढ़ की कार्यकर्ता सुधाजी को साथ लिया व महिलाओं से संपर्क साधा। **चंद्री देवी सरपंच** (जो तब सरपंच नहीं थीं) का बहुत सहयोग मिला। कुल मिलाकर गांव में ऐसा माहौल बनने लगा जो जल-जमीन-जंगल के काम के लिए लोकशक्ति को लामबंद करने के लिए जरूरी होता है। बात महिलाओं से पुरुषों और पुरुषों से और पुरुषों तक पहुंची। उनका रुझान भी जोहड़ बनाने, मेड़बंदी करने तथा जंगल बचाने के कामों की ओर होने लगा। यह सब इसलिए भी जरूरी था कि गांव के लोग इन कामों के महत्व को समझ लेंगे तो पूरे मन से इन कामों के साथ जुड़ेंगे। **जल प्रबंधन व जंगल की रक्षा ऐसे मुद्दे हैं जिन पर स्वप्रेरणा व पूरी समझ-संवेदनशीलता के बगैर कारगर आंदोलन निर्मित नहीं किये जा सकते**। जोहड़ों के निर्माण में **तरुण भारत संघ** ने जन-सहभागिता के जो मानदंड अपना रखे हैं उन्हीं के अनुरूप कालीखोल के लोगों ने अपना श्रमदान व आर्थिक अंशदान देकर सहयोग

किया। अब जब इस काम के लाभ मिलने लगे हैं तो साझे काम में उनका विश्वास बढ़ा है।

कालीखोल में कुएं से पानी भरती हुई महिलाएं

यह गांव कई मायनों में प्रगतिशीलता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। गांव बसावट की दृष्टि से जाति के आधार पर दो हिस्सों में बसा हुआ बेशक दिखता है, पर **यहां राजनीति जातिगत हितों से नहीं बल्कि गांव के हितों से निर्धारित होती है। इसका सबसे सटीक और अनुकरणीय उदाहरण पंचायत चुनाव में देखने को मिला।**

महिलाओं के लिए आरक्षित सीट पर चंद्री देवी (हरिजन) को गांव के गूजरों ने खड़ा किया। उनके सामने तीन गूजर उम्मीदवार थीं। गांव के गूजर मतदाताओं ने पूरी तरह **चंद्री देवी** का साथ दिया। यह **चंद्री देवी** की निःस्वार्थ कार्यकर्ता के रूप में छवि का सम्मान था। साथ ही इस बात का प्रमाण भी कि **लोकतंत्र को ढंग से चलाया जा सकता है बशर्ते लोग अपने संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर सोचने लग पाएं।** यह संभव हो सकता है, जैसे यहां हुआ है। अगर साझे लक्ष्यों, साझे हितों और साझे काम की महत्ता को व्यवहार में उतार लिया जाये। एक दफा शुरुआत हो जाये, तो आगे का काम आसान हो जाता है।

जोहड़ बन जाने व कुओं का जलस्तर बढ़ जाने से महिलाओं की दिनचर्या में फर्क आया है। पशुओं के लिए चारा-पानी के जुगाड़ में उनका समय कम खर्च होता है। इसलिए उन्हें आराम के लिए वक्त मिलने लगा है। **जब खाली समय मिलता है तो अपने अतीत व वर्तमान में झांकने का और अगली पीढ़ी के भविष्य के बारे में सोचने, चिंता करने व योजना बनाने तथा औरों से इसकी चर्चा करने का अवसर भी मिल जाता है।** जिस गांव में एक भी महिला (सरपंच समेत) साक्षर न हो वहां गांव के सभी बच्चों का स्कूल जाना उपरोक्त स्थापना को सही सिद्ध करता है। लड़के ही नहीं लड़कियां भी - हर बेटी-बहू पढ़ी-लिखी हो यह अकेली **चंद्री** का ही नहीं बल्कि **रत्नी, अंगूरी, जैतूनी, फुल्लम, जुम्मी, कमला, किशन देवी** सभी का साझा सपना है। जब चाह होगी तो राह भी निकलेगी ही। आज नहीं तो कल। **समाज ऐसे ही बदलता है। पहले सपनों के और सोच के स्तर पर, और फिर वास्तव में जमीनी स्तर पर।**

लड़कों के मुकाबले लड़कियों को इस गांव में कुछ ज्यादा लाड़-प्यार से पाला जाता है। मान्यता यह है कि लड़की को दूसरे घर जाना है, वहां पता नहीं कुछ मिले न मिले। पुरुष कमाई करके पैसा स्त्री के हाथ में देते हैं। यह बात अलग है कि कमाई का कुछ हिस्सा दुर्व्यसनों के लिए छिपा लेते हैं या बाद में लड़-झगड़ कर, छीन-झपट कर ले जाते हैं। खर्चे के निर्णय में स्त्रियों की पूरी सहभागिता है।

गांव के हालात में समान रूप से बदलाव तो नहीं आया है क्योंकि खुशहाली और बदहाली अपने बीज रूप में आज भी विद्यमान है। लेकिन सोच के स्तर पर जो परिवर्तन आया है और अपनी समस्याओं को लेकर जिस तरह मुखरता बढ़ी है वह अच्छे भविष्य की ओर संकेत है। यह **मुखरता** लोगों को रचनात्मक कार्यों के लिए लामबंद करने की दिशा में निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है।

तीन

खरखड़ा - पंचायत ढाकपुरी, पंचायत समिति उमरैण

मालाखेड़ा उप तहसील के एकदम भीतरी भाग में बसा छोटा सा गांव है खरखड़ा। गांव में 100-125 घर हैं जिसमें से 65 के करीब घर राजपूतों के बाकी मीणा, हरिजन गूजर, अहीर, जोगी, भोपा, ब्राह्मण, बनियों आदि के घर हैं। यानी राजपूत बाहुल्य वाला यह गांव अन्य जातियों के मिश्रित रूप का सा है। राजपूतों की यह प्रधानता गांव के तौर तरीके में भी प्रतिबिम्बित होती है। गांव पुरुष प्रधान है। महिलाएं किसी भी क्षेत्र में अग्रणी भूमिका नहीं निभाती तो जाहिर है गांव में जोहड़, बांध बनाने में भी नहीं।

गांव में तरुण भारत संघ ने '94 में बांध, जोहड़, बनाने का काम हाथ में लिया था। जो अभी तक भी जारी है। तब से अब तक 8-10 जोहड़, बांध बनाए गए हैं, 8 मेड़बंदी की गई है, गांव वाले कहते हैं 2-3 जोहड़ों की अभी और जरूरत है। काम में अग्रणी भूमिका गांव के युवा, कर्मठ, संवेदनशील सरपंच ब्रजराज ने निभाई है। वह बताते हैं कि मूंडिया में तरुण भारत संघ जोहड़ बना रहा था। हमने काम के बारे में पता किया और हम संपर्क करने मूंडिया गए। वहां हमें पता लगा कि तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता श्याम गंगा गए हुए हैं। तब मैं और कानसिंह वहां से श्याम गंगा गए। वहां जगदीश जी से मुलाकात हुई। हमने उनसे हमारे गांव में काम कराने को कहा। वे लोग तैयार हो गए। गांव में काम शुरू हो गया। सारे गांव ने सहर्ष सहयोग किया (ध्यान देने योग्य बात है कि अब तक प्रायः गांवों में गांव वाले तरुण भारत संघ की कार्यपद्धति व उसके कामों के लाभों से परिचित हो गए हैं इसलिए वे न केवल तुरंत, सहर्ष सहयोग देते हैं बल्कि स्वयं काम की अगुवाई करते हैं) श्रमदान दिया। जिनके खेत में बांध बना उन्होंने 50 प्रतिशत व जो सामलात में बना उसमें गांव ने 25 प्रतिशत अंशदान दिया।

मुरारीलाल शर्मा, जतनसिंह, महेंद्रसिंह, भंवरसिंह आदि बताते हैं जब जोहड़ नहीं थे तो पानी की कमी गांव की और गांव वालों की बदहाली का कारण

बनी हुई थी। गर्मी की तो बात ही क्या, सर्दी में भी कुएं में पानी टूट जाता था। सिंचाई के लिए एक घण्टा पानी सुबह लेते थे एक घण्टा रात को। अपनी जरूरत के लिए, पशुओं के लिए भी पानी की बड़ी दिक्कत थी। कुओं में पानी टूट जाने पर नीचे के कुओं में (रूपारेल के किनारे) पानी लेने जाना पड़ता था। नदी भी सूख गई थी। अब स्थिति एकदम बदल गई है। पशुओं के लिए कुएं से पानी नहीं खींचना पड़ता। वे जोहड़ में पानी पी लेते हैं। नदी भी बहने लग गई है। कुओं का जल-स्तर ऊंचा उठ गया है। किसी कुएं में पानी टूटता है किसी में नहीं। गांव के श्रम में बहुत फर्क आया है। राजपूतों में महिलाएं बाहर नहीं निकलतीं। कुएं से जानवरों को पानी पिलाने का काम भी पुरुष करते हैं। अन्य

सिर्फ सूखी लकड़ियां लाती हैं खरखड़ा की महिलाएं

जातियों में यह काम महिलाएं करती हैं। अतः गांव के स्त्री व पुरुष दोनों के श्रम में बहुत फर्क आ गया है। श्रम बचने से वे लोग अब पहले से ज्यादा पशु रखने लगे हैं। खेतों में पैदावर बढ़ गई है। जिन जमीनों में पहले कुछ पैदा नहीं होता था उनमें पानी आ जाने से खूब गेहूँ पैदा होने लगा है। बरसाती नालों से जमीनों का होने वाला कटाव बांध बन जाने के कारण रुक गया है। इस सब से गांव की आर्थिक स्थिति पर फर्क पड़ा है। जो लोग पहले बाहर मजदूरी को जाते थे वे अब फसल के समय में अपने खेत में ही काम करते हैं। केवल खाली समय में मजदूरी को जाते हैं। गांव कुल मिलाकर अभाव ग्रस्त गांव है। लोगों के पास

दो-चार बीघे से लेकर आठ-दस बीघे तक जमीन है। अक्सर जमीन असिंचित है। दो-दो, चार-चार पशु भी प्रायः लोग रखते हैं।

गांव के बुजुर्ग हज़ारीसिंह कहते हैं असली लाभ तब हो जब पहाड़ में बुजुर्गों द्वारा बनाए गए बांध, (जो कि माला का बांध, सईद का बांध, घाटी का बांध आदि अनेक नामों से जाना जाता है और जो अब टूट गया है) को फिर से बनाया जाए। पक्का बांध बनाया जाना चाहिए। उससे पांच गांवों को लाभ मिलेगा। जंगल के पशुओं को पानी मिलेगा, वह मुख्य सड़क पर है इसलिए आते-जाते लोगों को भी लाभ मिलेगा। जब लेखिका ने तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता जगदीश जी से पूछा कि वह बांध आप लोगों ने क्यों नहीं बनवाया तो उन्होंने बताया उसे बनाना बड़ा कठिन है। एक बार खुदाई शुरु भी कर दी थी पर पहाड़ पर पानी पहुंचाने मे बड़ी दिक्कत है। इसलिए छोड़ दिया। लेकिन ठाकुर हज़ारीसिंह ऐसा नहीं मानते। उनका मत है कि कोई दिक्कत नहीं है। पहाड़ पर पानी पहुंचाना थोड़ा अधिक खर्चीला होगा, उस खर्चे को झेल कर वह पक्का बांध ज़रूर बंधवाना चाहिए। सारे गांव वालों की भी यही राय है कि जब तक वह बांध नहीं बंधता तब तक असली लाभ नहीं है। इससे लेखिका को भी लगा कि कठिनाई व खर्च झेलकर भी बांध बनाया जाना चाहिए। क्योंकि

खरखड़ा ग्रामवासियों से आगे की योजनाओं पर बात करते हुए तरुण भारत संघ के मंत्री राजेंद्रसिंह

वैसा नहीं होने तक वह विनियोजन (खर्च) भी पूरा लाभ नहीं दे सकता जो जल संरचनाएं निर्मित करने पर अब तक किया जा चुका है। तरुण भारत संघ में जब इस बाबत लेखिका ने बात की तो सभी कार्यकर्ता इस बांध को बनाने को सहमत हो गए। इससे उम्मीद बंधती है कि अपने कार्य के अगले चरण में तरुण भारत संघ इस बांध के काम को हाथ में ले लेगा।

गांव में प्राइमरी स्कूल है। गांव के सभी बच्चे स्कूल जाते हैं। पर आम गांव वालों की शिकायत है कि महीने में 15 दिन अध्यापक स्कूल नहीं आता। इसका नतीजा यह होता है कि बच्चे यूं ही घूमते-फिरते रहते हैं। दिलचस्प बात यह रही कि ऐसे भी कई लोग थे जिनकी नज़र में अध्यापक का कोई दोष नहीं है – वह निष्ठावान है पर सरकार अध्यापकों को तरह-तरह के कामों में लगा देती है। इसलिए उन्हें जाना पड़ता है कभी वेतन लेने, कभी साक्षरता, कभी मीटिंग, कभी कुछ तो कभी कुछ। बच्चे भी बहुत ज्यादा हैं। अध्यापक एक है वह उन्हें संभाल नहीं पाता। और अध्यापकों की नियुक्ति आवश्यक है।

पांचवीं के बाद बच्चे पढ़ने के लिए केखावाला जाते हैं। लड़कियों को प्रायः रोक लिया जाता है। गांव की लगभग 5 प्रतिशत महिलाएं 5वीं तक पढ़ी हुई हैं। पुरुष लगभग 40 प्रतिशत पढ़े हुए हैं। गांव के दसेक लड़के बी.ए. भी हैं। गांव वाले कहते हैं कि गरीबी व अज्ञान के कारण शुरू से ही बच्चों को काम में लगा लेते हैं। लड़कियों के मुकाबले लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है।

प्रायः लोगों के 8-10 बच्चे हैं। अब धीरे-धीरे जागरुकता आ रही है। लोग परिवार नियोजन से परिचित हो रहे हैं। धीरे-धीरे अपना भी रहे हैं। सरकारी एजेंसियों की यहां तक पहुँच तो बनी है। नसबंदी, टीकाकरण आदि के कार्यक्रम चलते हैं। उप तहसील - तहसील में कैंप लगते हैं, तब लोग नसबंदी कराते हैं। नसबंदी प्रायः महिलाएं ही कराती हैं। ब्रजराजसिंह कहते हैं (अन्य लोग उनका समर्थन करते हैं) इस सब में पुरुषों की ही चलती है। स्त्रियां नसबंदी कराना चाहती हैं पर पुरुष नहीं कराने देते। कमाई पुरुष घर में रखता है पर खर्च स्वयं अपनी इच्छा से करता है। बहुत कम घरों में स्त्रियों की सलाह से खर्च किया जाता है। आमतौर पर पुरुष यही

कहता है कि मेरी कमाई है मैं जैसे चाहूंगा खर्च करूंगा। लेकिन विद्या देवी, जनक देवी, लीला देवी, गुलाब बाई, उर्मिला देवी, माया देवी उनकी इस बात से सहमत नहीं। वे मानती हैं नसबंदी सहमति से होती है। नसबंदी स्त्रियां ही कराती हैं। लड़के की इंतजार में बच्चे ज्यादा हो जाते हैं। आजकल कम बच्चों पर कराने लगी हैं। विद्या देवी ने 13 वर्ष पूर्व 4 बच्चों पर नसबंदी कराई थी। यही बात खर्चे की है । यदि घर में स्त्री समझदार है तो खर्च उसकी सलाह से होता है । यदि वह समझदार नहीं है तो पुरुष अपनी चलाता है। वैसे यह व्यक्ति-व्यक्ति पर भी निर्भर करता है।

गांव की स्त्रियां चाहती हैं लड़कियां खूब पढ़ें । पर वे उन्हें पढ़ने दूसरे गांव नहीं भेजना चाहतीं। लड़कियों की सुरक्षा का प्रश्न है। यह चिंता एकदम गैर वाजिब भी नहीं है। यौन उत्पीड़न और देह-दोहन की घटनाओं की जानकारी संचार माध्यमों से सब जगह पहुंच ही जाती है । और फिर उस पर चर्चा भी होती ही है। लाचारी और असहायता की स्थिति में लड़कियों की शिक्षा पर नकारात्मक असर पड़ता है। गांव में ही दसवीं तक स्कूल होना चाहिए। विद्या देवी की लड़कियां शादी के बाद पढ़ रही हैं।

खरखड़ा से **लक्ष्मी देवी यादव** व पड़ौस के गांव पथरोड़ा से नवली पंच हैं। दोनों ही निरक्षर हैं । बिल्कुल सक्रिय नहीं है। उनमें काम समझने व करने की कुशलता भी नहीं है। कभी-कभी मीटिंग में जाती हैं पर चुप रहती हैं ? ज़रूरत पड़ने पर दस्तख़त कर देती हैं। ढाकपुरी की पंच **सुनीता** व नांगल टोड्यार की पंच **मुन्नी देवी** सक्रिय दबंग महिलाएं हैं। चर्चा में खूब भाग लेती हैं। बात मनवा कर मानती हैं। विकास कार्यों की खूब समझ है, खूब दिलचस्पी लेती हैं। सुनीता 10वीं पास है, **मुन्नी** देवी साक्षर है। **ब्रजराजसिंह** बताते हैं ढाकपुरी से **उषा देवी जैन** सरपंच के चुनाव के लिए खड़ी हुई थीं उन्हें मुश्किल से बिठाया। यदि वे खड़ी रहतीं तो निश्चित जीततीं। वे पालम, दिल्ली की रहने वाली हैं, पढ़ी-लिखी हैं, सक्रिय हैं।

गांव के लोग इलाज डॉक्टर से कराते हैं, ठीक न होने पर मानते हैं ऊपरी असर है । तब झाड़ा लगवाते हैं। महिलाएं कहती हैं कि पहले

स्त्रियों पर भूतनी आती थी अब नहीं आती। गांव में क्योंकि सरकारी एजेंसियों की पहुंच है अतः टीकाकरण, पोलियो की दवाई आदि समय-समय पर मिलने वाली सब सुविधाओं का लाभ लिया जाता है। गांव की महिलाएं बड़े कृतज्ञता के भाव से कहती हैं कि आंगनबाड़ी की बहिनजी सब काम करती हैं।

गांव में वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन की भारी मांग है। गांव की वृद्धा, विधवा महिलाओं ने लेखिका से बात करते हुए इस बात पर जोर दिया कि उनकी पेंशन कराई जाय। पता करने पर मालूम चला कि तकनीकी कारणों से ऐसा नहीं हो पाता, किसी का जवान लड़का है, किसी के नाम पर जमीन है, किसी का राशन कार्ड संयुक्त है। महिलाएं इन तकनीकी बातों को समझ नहीं पातीं। उन्हें शिकायत है कि उनकी पेंशन कराई नहीं जा रही। सरपंच समस्या के प्रति संवेदनशील है पर तकनीकी कारणों से लाचार महसूस करता है।

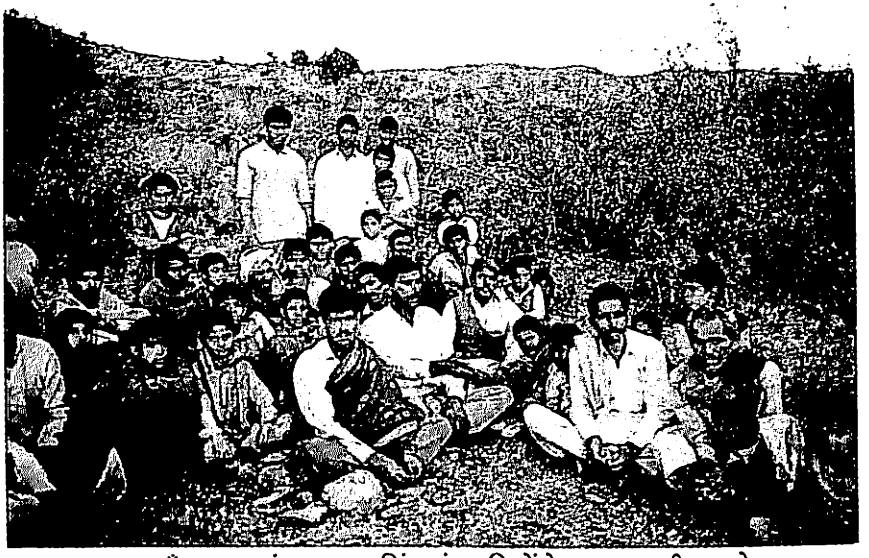

खरखड़ा गाँव का सरपंच ब्रजराज सिंह गांववासियों के साथ बातचीत करते हुए।

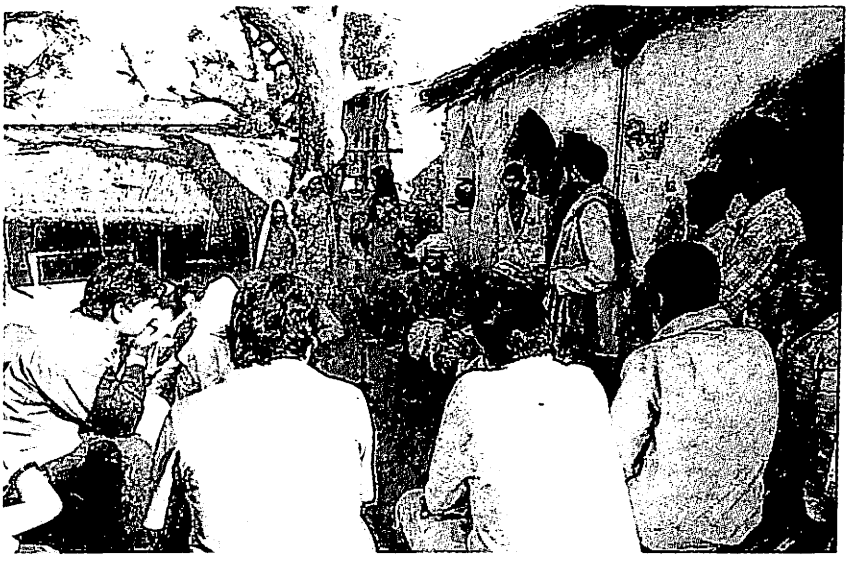

चार

पथरोड़ा - पंचायत ढाकपुरी, पंचायत समिति उमरैण।

खरखड़ा जैसा ही गांव। गांव में पहुंचने के लिए साढ़े चार किलोमीटर का कच्चा रास्ता दूरी के अहसास को सघन कर देता है। मेव बहुल गांव है। पर इसकी ख़ूबी यह है कि जिस समय पूरा देश सांप्रदायिक उन्माद की जकड़ में था, उस समय भी यहां एकदम अमन-चैन का वातावरण बना रहा। सदियों से चला आ रहा भाईचारे का भाव टूटा नहीं, बल्कि पुष्ट ही हुआ।

गांव में कुल मिलाकर करीब 80 घर हैं। इनमें से 60 घर मेवों के तथा शेष पिछड़ी व अनुसूचित जातियों के।

जब यहां पानी की किल्लत थी तो यहां के हालात भी बदहाली के थे। वैसी ही बदहाली जैसी दूसरे गांवों ने झेली थी। आसपास के इलाके में पानी के काम से जब रंगत बदलने लगी और यहां के सही सोच-समझ वाले लोग उनके संपर्क में आने लगे तो इन्हें भी रास्ता सूझने लगा। जैसे-तैसे अपने जीवन

यापन के जुगाड़ में लगे लोग सही-ग़लत के बारे में सोचने लगे। अपने भले-बुरे के बारे में सोचने के साथ-साथ गांव के हितों के बारे में भी सोचने लगे। हालात को बदल पाने के लिहाज से दूसरों की सफलता की कहानियां अपनी नाउम्मीदी को तोड़ने में मददगार होती हैं। आशा का संचार करने लगती हैं। आशा का संचार होते ही अंधेरा छंटने लगता है।

तरुण भारत संघ के ऊर्जावान कार्यकर्ताओं - जगदीश गूजर एवं गोपालसिंह के नेतृत्व में खरखड़ा गांव में जोहड़ों व मेड़बंदियों का काम चल रहा था। पथरोड़ा के सुलेमान, जुम्मा तथा भुट्टे खां जैसे पथरोड़ा के लोग उनके संपर्क में आए। इनका ऐसा काया पलट हुआ कि ये दर्शक से कार्यकर्त्ता बन गए। सुलेमान का काया पलट तो कहानी-क़िस्से जैसा लगता है। वह कहते हैं : **मैं भी कोर्ट-कचहरी जैसी जगहों पर 'इधर-उधर' करके ही अपना और अपने परिवार का पेट पालता था। पानी के बिना हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। आज पानी है, तो नेकनीयती और ईमानदारी से काम करने लगा हूं।** तो पानी के काम ने सुलेमान की न केवल जीवन दृष्टि व आचरण को प्रभावित किया बल्कि उन्हें सक्रिय कार्यकर्त्ता बना दिया और आज वह अपने इलाके के बाहर भी जल और जंगल संरक्षण के काम में जी-जान से जुट गए हैं। एक निष्ठावान सिपाही की तरह।

जब जोहड़ का काम शुरू नहीं हुआ था तो पानी का संकट तो था ही। नालों का पानी खेतों को काट कर सीधा गांव में आ जाता था। खेतों के कटाव से बेहद नुकसान होता था। रास्ते भी चलने लायक नहीं रह जाते थे। कच्चे रास्तों की कैसी दुर्गति हो जाती होगी, इसका अंदाज़ लगा पाना मुश्किल नहीं है।

अब बहुत फ़र्क आ गया है। कुओं का जल-स्तर इतना बढ़ गया है कि ठेठ गर्मी के दिनों में भी पानी टूटता नहीं। पशुओं के लिए पानी जोहड़ से मिल जाता है। गर्मी में जोहड़ जब सूखने लगता है तो कुओं के पानी से जोहड़ को भर लेते हैं। गांव में 25 ट्यूब वैल हैं। पानी तो खूब है पर बिजली की किल्लत बनी हुई है। बिजली पूरी मिलती रहे तो गांव का नक्शा ही बदल जाए। वैसे यह बदलाव तो आ ही गया है कि गांव की कुल 1300 बीघा जमीन में से 1100 बीघा में तो हल चल ही रहे हैं। आराम से दो फ़सलें ली जाने लगी हैं। अब तो गांव के पास ही रुपारेल बहने लग गयी है। पूरे साल। इसने भी

हालात को बदलने में बड़ा सहयोग किया है।

पशुओं को चारा-पानी की सुविधा हो गई है तो दूध भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगा है। अधिकांश लोगों के पास भैंसे हैं। कुछेक के पास बकरियां। पशुओं के लिए लगभग पूरे साल चारा उपलब्ध रहने लगा है। कभी खत्म हो जाता है या कम पड़ने लग जाता है तो इधर-उधर से ख़रीद लेने में भी ज़ोर नहीं पड़ता क्योंकि सब की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

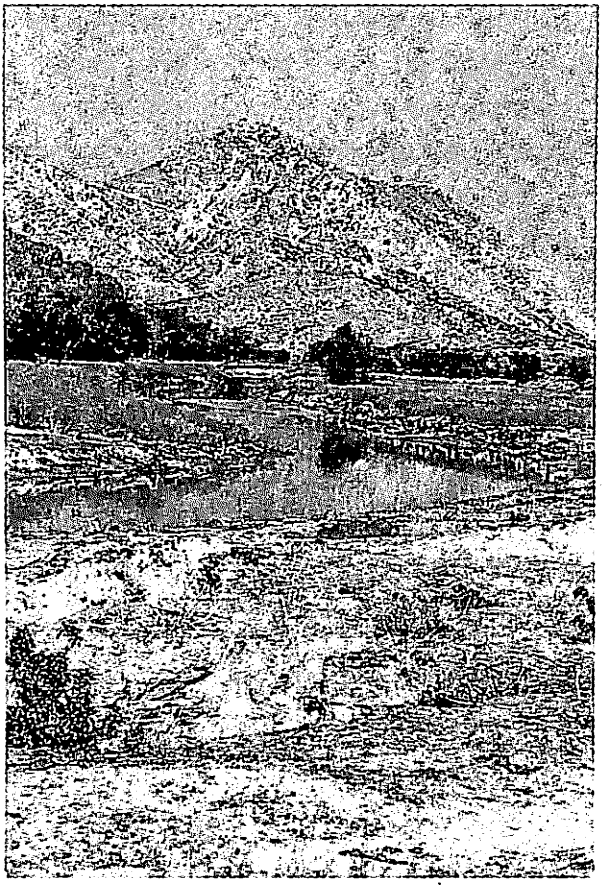

पथरोड़ा के पास बहने लगी है रूपारेल

जोहड़ों तथा अन्य जल संरचनाओं के निर्माण कार्य में यहां अग्रणी भूमिका पुरुषों ने ही निभाई है। लेकिन महिलाओं को इससे राहत तो मिली ही है। अब उन्हें उतना कड़ा श्रम नहीं करना पड़ता जितना पहले करना पड़ता था। अब रात-दिन खटना नहीं पड़ता। आराम मिलने लगा है। वैकल्पिक काम के बारे में तो अभी सोचा भी नहीं जाने लगा है। यह भी कहा जा सकता है कि महिलाओं में चेतना का अभाव है। इसलिए वे आगे बढ़कर अपनी भूमिका अदा करने की स्थिति में नहीं आ पाई हैं। काली खोल और लीलूंडा से तुलना करने पर, यहां की महिलाएं अधिक पुरातनपंथी दिखती हैं।

परिवार नियोजन के साधन तो अपनाए जाने लगे हैं, पर छोटे परिवार की बात असर नहीं कर पाई है। 6-7 बच्चे हो जाने के बाद नसबंदी का ध्यान आता है। नसबंदी अधिकांश मामलों में महिलाएं ही कराती हैं। यह दूसरी बात है कि कहा यही जाता है कि पुरुषों-महिलाओं की आपसी सहमति से ही ऐसा होता है।

बच्चों की शिक्षा की ओर ध्यान जाने लगा है। महिलाओं व पुरुषों दोनों की ही आकांक्षा है कि उनके बच्चे ख़ूब पढ़ें। आगे बढ़ें। पर इस सब के बावजूद लड़कियों की शिक्षा पर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है। लड़कियों को गांव से दूर के स्कूल में भेजने में स्वाभाविक हिचकिचाहट इसका प्रमुख कारण है। सिर्फ लड़के ही जाते हैं - खूंटेटा बांबोली के स्कूल में।

यहां इतनी चेतना तो आई है कि हारी-बीमारी की स्थिति में अस्पताल ही लेकर जाते हैं मरीज़ को। झाड़-फूंक पर से भरोसा उठा है।

छोटी, भुट्टे खां, चंद्री, अख्तरी, फ़जरी, रामहेत बैरवा, झूरू आदि खुद चाहे पढ़े-लिखे नहीं, बच्चों को पढ़ाने के महत्त्व को समझने लगे हैं। इन सबका मानना है कि लड़की पढ़ेगी तो अपने घर को ढंग से चलाएगी। बाल-बच्चों का लालन-पालन ढंग से करेगी। गृहस्थी को ठीक से चलाएगी। पर सब के चेहरों पर जैसे एक ही सवाल लिखा दिखता है - कैसे ? क्योंकि ऐसी कोई संभावना ही नज़र नहीं आती कि निकट भविष्य में गांव में कोई ऐसा स्कूल खुल जाए जहां पांचवीं से आगे पढ़ाया जा सके लड़कियों को। जब तक ऐसा नहीं हो जाता लड़कियों की पढ़ाई का मामला सपना-भर बना रहेगा।

पथरोड़ा और खरखड़ा का बदला हुआ दृश्य आर्थिक बदलाव की सूचना देता है। महिलाओं की ज़िंदगी के आसान हो जाने की भी सूचना देता है। पर परिवार के बाहर महिलाओं की उल्लेखनीय भूमिका की गवाही नहीं देता। उत्साहित करने वाली सचेतनता की भी नहीं। कालीखोल और लीलूंडा की तुलना में ये दोनों गांव इस दृष्टि से भी अलग और भिन्न दिखते हैं कि पानी के काम में यहां अगुवाई सिर्फ़ पुरुषों की रही है। श्रमदान में योगदान भी उन्हीं का रहा है। पानी आ जाने के बाद महिलाओं को जो

राहत मिली है उसका भी सकारात्मक असर यहां दिखाई नहीं पड़ता। महिला कार्यकर्त्ताओं का अभाव या इसकी ज़रूरत पर कम ज़ोर - कारण जो भी हो महिलाएं संगठित होने की ज़रूरत की समझ को प्रदर्शित नहीं करतीं। महिला मंडलों का गठन पहली प्राथमिकता होना चाहिए। पारंपरिक रूप से पुरुषों के माने जाने वाले कामों (घर से बाहर के तमाम कामों) में महिलाओं की भूमिका नहीं बढ़ेगी तो उनके सबलीकरण की बात भी कोरी कल्पना ही बन कर रह जाएगी। पानी के प्रताप से मिले अतिरिक्त खाली समय के वैकल्पिक इस्तेमाल की बात भी ऐसे में महिलाओं के दिमाग़ में नहीं आएगी। ऐसा न होने तक सबलीकरण की बात एक नारे से अधिक कुछ नहीं हो सकती। इस परिदृश्य में तरुण भारत संघ की यह ज़िम्मेदारी बन जाती है कि वह अपने दूरगामी लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रसंग में ऐसे ठोस क़दम उठाए जो दूसरी जगहों पर उठाए जा चुके हैं और वहां असर भी दिखा चुके हैं। सचेतनता के अभाव में पंचायतों में भी महिलाओं की भागीदारी मात्र प्रतीकात्मक बन कर रह जाती है। उनकी भूमिका असरदार नहीं बन पाती। और इस तरह आरक्षण के ख़िलाफ़ माहौल बनता है जो महिलाओं की सामर्थ्य को नकारता है।

ऐसे शुरू होती है महिला समूह चर्चा

दड़की माई। उम्र लगभग 60 वर्ष। गांव लीलूंडा। पंचायत माधोगढ़।

दड़की माई। उम्र लगभग 60 वर्ष। पर फिर भी नये और जोखिम भरे काम करने के लिए तत्पर। वह बताती हैं कि जोहड़ बनाने के काम में सरिस्का वालों ने बहुत रोड़े अटकाये। मुश्किलें पैदा की। कहा कि यह जमीन जंगलात की है। इसमें जोहड़ नहीं बन सकता। तब **दड़की** 20 व्यक्तियों के साथ सरिस्का कार्यालय गयी। वहां जाकर उसने उनका विरोध किया। उन्हें चुनौती दी कि रोक सकते हो तो जंगल काटने वालों को रोको। हमारा जोहड़ जरूर बनेगा। आप अपने गार्ड को भी पाबंद कर दें कि जोहड़ बनाने के लिए जो ट्रैक्टर सरिस्का के गेट में से जाना है, उसे रोके नहीं। वरना ठीक नहीं होगा। वह स्वयं अन्य लोगों को लेकर ट्रैक्टर के साथ गेट में घुसी। उसे रोका नहीं गया।

दड़की की पहली शादी कहीं और हुई थी। उससे नहीं बनी क्योंकि वह अपने पति से परेशान थी। **दड़की** ने तब दूसरी शादी की, प्रभाती से। तब पहले पति ने उसे बहुत परेशान किया। उसे कई बार कोर्ट, कचहरी और पुलिस के चक्कर लगाने पड़े। पर इसका एक फायदा यह हुआ कि उसकी हिम्मत बहुत खुल गयी। उसके काम का दायरा फैल गया। साहसी तो वह थी ही, बहुत मेधावी भी थी। वह विपत्तियों से घबरायी नहीं। दूर तक देख पाने की अपनी क्षमता के कारण वह जोहड़ निर्माण के महत्व के काम को औरों से पहले समझ गयी। और यहीं से उसकी नेतृत्वकारी भूमिका की शुरुआत हुई।

गांव के लोग **दड़की माई** के कामों की तारीफ करते अघाते नहीं। उसने माधोगढ़ पंचायत के सरपंच पद के लिए चुनाव लड़ा, पर हार गयी। उसे और गांव वालों को यह शिकायत है कि वोटों की गिनती में धांधली हुई थी। **दड़की माई** मौजूदा सरपंच के कामकाज से एकदम नाखुश हैं। क्योंकि वह गांव की खैर-खबर ही नहीं रखती। उसे चुनाव हार जाने का अफसोस अपने लिए

नहीं है बल्कि इसलिए है कि वह जीत गयी होती, तो कुछ काम करवाती। गांव का विकास होता। सड़क बनती। पानी का साधन सरकारी मदद से हो पाता। गांव में स्कूल बनवाती। 50 बच्चे हैं गांव में जो सिर्फ इसलिए नहीं पढ़ पाते कि वहां स्कूल नहीं है। **दड़की माई** की आंखों के सामने कुछ दृश्य उभरने से लगते हैं - मैं गांव के लोगों को बैंक से लोन दिलवाती। ओल्डेज पेंशन दिलवाती। विधवाओं की पेंशन करवाती। गांव में स्वास्थ्य की सुविधा दिलवाती।

चंद्री देवी बैरवा। उम्र 50 वर्ष। गांव कालीखोल। सरपंच बख्तपुरा पंचायत।

कर्मठ और उत्साही **चंद्री देवी** अपने इलाके में बेहद लोकप्रिय है। वह तीन-तीन गूजर प्रतिद्वंद्वियों को हराकर सरपंच बनी। यह गांव वालों की समझदारी का भी नमूना है कि उन्होंने जात के आधार पर नहीं, काम के आधार पर वोट दिया।

चंद्री देवी बताती है - मैं जब सरपंच बनी थी, तो सोचती थी कि गांव का विकास कराऊंगी। सड़क बनवाऊंगी। महिलाओं को संगठित करूंगी। पर सरपंच बनने के बाद मेरी समझ में आया कि सब कुछ इतना आसान नहीं है।

वह अपने काम को कितनी संजीदगी से लेती है, इसका सबूत यह है कि गांव में धर्मशाला बन गयी है। दो-तीन कुएं बन गये हैं। डेयरी का काम शुरू हो गया है। इंदिरा आवास योजना के तहत तीस-चालीस मकान बन गये हैं। भैंस, बकरी व ऊंट गाड़ी के लिए लोन की कार्यवाही शुरू हो गयी है। विधवाओं की पेंशन व ओल्डेज पेंशन कराने के काम भी हाथ में लिये गये हैं।

चंद्री देवी सड़क के न बन पाने से बहुत दुःखी है। कहती है - इसके लिए मैं मंत्री तक से मिल चुकी हूँ। सड़क मेरी पहली प्राथमिकता है। यह काम

बन जाये तो सरपंच होना सार्थक हो। **तरुण भारत संघ** की गतिविधियों के बारे में चंद्री देवी की बहुत ऊंची राय है। वह संस्था के कामों में पूरा सहयोग ही नहीं करती, बल्कि सरपंच होने के साथ-साथ अपने आप को संस्था का सक्रिय कार्यकर्ता भी मानती है। वह इस बात से बहुत खुश है कि उसके पति उनके काम में सहयोग करते हैं। अपनी नहीं चलाते। जिम्मेदारी के पदों पर महिलाएं और अधिक आएं, यह उनकी कोशिश रहती है।

चंद्री देवी मानती है कि समाज में महिलाओं का हर तरह से बराबरी का दर्जा होना चाहिए। महिलाओं को खूब पढ़ना चाहिए तथा समाज के काम में जुड़ना चाहिए। वह कहती है - हम चाहते हैं हमारी बेटी, बहू पढ़ी-लिखी हो। पर अभी समय पूरी तरह से ऐसा नहीं बन पाया है। **चंद्री देवी** के मन में साक्षरता अभियान को लेकर बहुत गुस्सा है। शोर बहुत मचा। काम कुछ नहीं हुआ। जंगल की सुरक्षा को समर्पित **चंद्री देवी** का कहना है कि पशु रखेंगे, तो जंगल से चारा लिये बिना नहीं चल सकता। पर हमने मिलकर ऐसा वातावरण बनाया है कि पेड़ों को नुकसान नहीं पहुंचने देते। **चंद्री देवी** जोर देकर इस बात को कहती है कि जंगल की रक्षा तभी हो सकती है, जब गांव वालों पर भरोसा किया जाये। परेशान करने वाले और फर्जी केस चलाने वाले जंगलात के रिश्वतखोर कारिंदों पर अंकुश लगाया जा सके।

जगदीश गूजर। उम्र 33 वर्ष। गांव नाडू। राजगढ़ तहसील। अलवर। शिक्षा हायर सेकण्डरी।

विनम्र, कर्मठ और समर्पित कार्यकर्ता के रूप में इलाके में पहचान बना चुके हैं **जगदीश गूजर**। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गांव के लोग, महिलाएं भी, उन पर सहज विश्वास कर लेते हैं। इसमें कई बार जातीय समीकरण भी काम आते हैं। **जगदीश गूजर** बताते हैं कि 1987 में संस्था के साथ मेरा जुड़ाव हुआ। '87 में बहुत बड़ा सूखा पड़ा था। तब **गोवर्धनजी** (तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता) देवरी गांव जाते थे। वहां उन्होंने संगठन तैयार किया

था। अकाल के दौरान वन विभाग के लोग बहुत रिश्वत वसूल कर रहे थे। जो रिश्वत नहीं देता उसे बहुत परेशान करते थे। बाहर से गधों पर अनाज आता, उसे रोक देते। उनके मवेशियों को बंद कर देते। इस सब के विरुद्ध **गोवर्धनजी** ने गांव वालों को संगठित किया। ऐसी ही समस्या हमारे गांव में भी थी। हम जंगलात वालों से बिना किसी की सहायता के लड़ रहे थे। पर उल्टी तरह से। हम कहते थे हम पेड़ भी काटेंगे और आपको रिश्वत भी नहीं देंगे। जंगलात वालों ने हमारे 35 परिवारों के पूरे गांव पर केस कर दिया। पास के गांव में **गोवर्धनजी** तय करा चुके थे कि पेड़ नहीं काटेंगे। काटने वाले पर इतना जुर्माना, काटता देखकर न बताने वाले पर इतना जुर्माना आदि-आदि। हम **गोवर्धनजी** से मिलना चाहते थे। संयोग से उसी शाम **गोवर्धनजी** भागते हुए हमारे घर आ गये। जंगलात विभाग के पांच आदमी उन्हें मारने के लिए उनका पीछा कर रहे थे। सारा गांव इकट्ठा हो गया। सबने कहा जिसका पीछा आप कर रहे हैं वह आदमी हमारे पास है। पर हम आपको देंगे नहीं। जंगलात वाले टहला लौट गये। रात में **गोवर्धनजी** से बात की। उन्होंने हमें समझाया कि तुम उल्टा काम कर रहे हो। **सबसे पहले जंगल काटना बंद करना पड़ेगा। गांव वाले समझ नहीं पाये कि जंगल न काटने से हमारा क्या भला होगा।** जरूर यह व्यक्ति वन विभाग का घुसपैठिया है। पांच दिन तक गांव में बराबर विचार-विमर्श, मीटिंग चलती रही। रोज रात को **गोवर्धनजी** समझाते रहे। पांचवीं मीटिंग में गांव सहमत हो गया। गांव में जंगल सुरक्षा समिति बनी और जंगल न काटने के लिए दस्तूर तय किये गये। हमने अपने गांव में स्वयं अपने बूते पर बिना किसी मदद के तीन तालाब तैयार किये। तभी **तरुण भारत संघ** से मेरा जुड़ाव शुरू हुआ। हमारे गांव में ही मेरी ट्रेनिंग हुई। **लक्ष्मणसिंह** व **गोवर्धनजी** के साथ फील्ड में काम करके व्यावहारिक ट्रेनिंग हुई। औपचारिक ट्रेनिंग नहीं हुई।

जगदीश गूजर कहते हैं - संस्था से जुड़ने से पहले मैं फौज में जाना चाहता था। मेरे पिता चाहते थे कि मैं बी.कॉम पास करके गांव के आसपास कोई नौकरी कर लूं। मैं इसके लिए तैयार नहीं था। तो फिर उन्होंने मुझे आई.टी.आई. कराया, जिससे कि मैं गांव में अपना कोई काम करना शुरू कर दूं। इसी समय उपरोक्त सारी घटनाएं घटित हो गयीं। पिताजी **तरुण भारत संघ** के साथ मेरे जुड़ाव के खिलाफ थे। रोज-रोज की चिक-चिक और कहासुनी। तंग आकर मैं **तरुण भारत संघ** छोड़ने की सोचने लगा। तभी **सरिस्का खान**

बंद करो आंदोलन शुरू हो गया। मैं इससे बहुत प्रभावित हुआ और तय किया कि **तरुण भारत संघ** कभी नहीं छोड़ूंगा। मुझे इस बात का बिल्कुल अफसोस नहीं है कि मैं सरकारी नौकर होता तो ज्यादा कमाता। तब से संस्था के हर काम में साथ जुड़ा हूं। बहुत संतुष्ट हूं। मानदेय के बारे में मैंने कभी सोचा ही नहीं। परिवार की गुजर-बसर जमीन (22 बीघा) के सहारे हो जाती है। चार भाई हैं, पर जमीन अभी बंटी नहीं है। पिता के और मेरे सोच में बहुत अंतर है। इसलिए गांव में रहने का दबाव भी नहीं झेलना पड़ता। संस्था से मिला सब पैसा मैं अपने खर्च के अतिरिक्त पिता को दे देता हूं। मेरे दो बच्चे हैं। मैं चाहता हूँ बच्चे पढ़े-लिखें और समाज का काम करें।

मिश्रीलाल बैरवा। उम्र 45 वर्ष। आठवीं पास। गांव घेवर। टहला। राजगढ़।

तरुण भारत संघ से पांच साल पहले एक कार्यकर्ता की हैसियत से जुड़े। उन्होंने संस्था से अपने जुड़ने की कहानी इस तरह बतायी। संस्था के कार्यकर्ता बराबर गांव आते थे व जल संरक्षण की बात करते थे। वे बार-बार मीटिंग करते थे। गांव में मुझे व **मनोहरलाल** को काम में रुचि हुई। **राजेन्द्र सिंह** हमारे गांव आये। उन्होंने हमें आश्रम आकर संस्था का काम करने का न्यौता दिया। हम लोग यहां आये। संस्था का काम देखा, समझा और इस काम से जुड़ गये। बाद में **मनोहरलाल** संस्था छोड़कर चला गया। हमारे गांव में संस्था ने दो बड़े बांध बनाये। कुछ छोटे जोहड़ और मेड़बंदियां भी बनायीं। इस काम के होने के बाद हम संस्था से जुड़े। हमें 9 महीने की ट्रेनिंग दी गयी। ट्रेनिंग के दौरान भी मानदेय मिलता था।

ट्रेनिंग पूरी होने पर गांवों में बांध, जोहड़, एनीकट, मेड़बंदी कराने का काम करना शुरू कर दिया। साथ ही गांव में महिला समिति बनाना, गांव को संगठित करना, एकजुट करना आदि भी पानी के हमारे काम का ही हिस्सा था। अधिकतर गांवों में काम को लेकर हमारे सामने कोई समस्या नहीं आती। गांव वालों की जो शंकाएं होती हैं, उनका समाधान बातचीत के दौरान ही हो जाता है। आसानी से हमारी बातों से सहमत हो जाते हैं। सहयोग करते हैं। अपना अंशदान देते हैं। श्रमदान देते हैं। महिला समिति गठित करने व ग्रामसभा संगठित करने में भी खूब सहयोग मिलता है। पर जिन गांवों में सरिस्का अभयारण्य वालों का दबदबा है वहां दिक्कत आती है। गार्ड वगैरह गांव जाते हैं। वे जोहड़ बनाने में बाधा डालते हैं कि जोहड़ बन जाएगा तो उस पर पानी पीने जंगल के पशु आएंगे। उस वक्त उनका शिकार कर लिया जाएगा। पर गांव वाले यह वचन संस्था को देते हैं कि शिकार नहीं होगा (वे होने देते भी नहीं हैं। गोली की आवाज सुनकर सारा गांव वहां इकट्ठा हो जाता है)। यह पक्का भरोसा हो जाने पर ही संस्था काम शुरू करती है। लेकिन जंगलात वाले नहीं मानते। बार-बार रुकावटें डालते हैं। बार-बार काम बंद कर जाते हैं। गांव वाले सामना करते हैं। उनके जाते ही काम फिर शुरू कर देते हैं। इस तरह जोहड़ तैयार होता है।

संस्था के काम करते हुए हम बहुत संतुष्ट हैं। संस्था के साथ काम करने से हमारी पहचान इस रूप में बनी है कि इस आदमी ने हमारे गांव में इतना-इतना काम किया है। इससे हमें गर्व अनुभव होता है कि हम लोगों के भले का बड़ा काम कर रहे हैं। यही भाव संस्था से हमें जोड़े रखता है। मानदेय पर हम इतना ज्यादा ध्यान नहीं देते। महिलाओं के बीच कार्य करने में भी कोई रुकावटें नहीं आतीं। शुरू-शुरू में तो वे संकोच करती हैं। अजनबियों के साथ खुला भी नहीं जा सकता। पर धीरे-धीरे उनका विश्वास जम जाता है। तब वे सहज आत्मीय भाव से सहयोग करती हैं।

ब्रजराजसिंह। उम्र 30 वर्ष। आठवीं पास। सरपंच

तरुण भारत संघ का काम गांव में शुरु कराने में ब्रजराजसिंह की अग्रणी भूमिका है। वह गांव के सरपंच हैं, सक्रिय कार्यकर्ता हैं, गांव की समस्याओं के प्रति संवेदनशील हैं। उम्र 30 वर्ष है। 8वीं कक्षा पास है। 5 भाइयों के बीच 25 बीघा जमीन और तीन भैंसें हैं।

4 लड़की और एक लड़का उनकी संतानें हैं। डेढ़ वर्ष पूर्व पत्नी उर्मिला देवी ने नसबंदी कराई। ब्रजराज के अनुसार लड़कियों को खूब पढ़ाना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए, नौकरी करनी चाहिए। वह कहते हैं मैं अपनी लड़कियों को जहां तक वे पढ़ना चाहेंगी, पढ़ाऊंगा। लड़के को भी पढ़-लिख कर लायक बनाना चाहता हूं फिर वह जो करना चाहे करे।

उन्होंने जवाहर रोजगार योजना के तहत गांव में कुआं खुदवाया पैसा समाप्त हो जाने के कारण गट्टा नहीं बंध पाया वह इस वर्ष बंध जायेगा।

स्कूल की बाउंडरी अकाल राहत कार्यक्रम में बंधवाई। वह भी पूरी नहीं हो पाई क्योंकि इसमें पैसा 30 जून से पहले-पहले ही खर्च किया जा सकता है। पहले पंचायत का रिकार्ड तलब हो गया था इसलिए काम देर से शुरू हो पाया।

बडेर वाली सड़क से नांगल टोड्यार तक और वहां से बामन का तिबारा तक कच्ची सड़क बनाई। पथरोड़ा में स्कूल का वरांडा बनवाया, बाउंडरी बनवाई, चौमूं में बाउंडरी बनवाई।

गांव में सड़क बनवाना चाहते हैं, पंचायत के पास पैसा भी है पर गांव वाले सड़क नहीं बनने देते क्योंकि इससे उनके खेत कटते हैं। वे बताते हैं रेवेन्यू रिकार्ड में जो सड़क है वह लोगों के खेतों में से है। लोग खेत काटने नहीं देते। जिस कच्चे रास्ते से आप आए हैं वह रेवेन्यू रिकार्ड में नहीं है निजी है। उसे जब चाहें तब बंद किया जा सकता है।

गांव में नल लगवाना चाहते हैं पर कहते हैं सरकार में कोई सुनवाई नहीं है। जो सरकारी पैसा स्वीकृत होता है उसे भी पटवारी, तहसीलदार खा जाते हैं। वृद्धावस्था पेंशन वगैरह में भी सरकारी कर्मचारियों की चलती है क्योंकि गलती की जिम्मेदारी उन्हीं के सिर आती है। वे सरपंच की बात नहीं मानते। यही बात गरीब परिवार चयनित करने आदि में है। वृद्धावस्था पेंशन गांव में किसी को नहीं मिलती। लोग राशन कार्ड बनते वक्त उम्र अंदाजे से कुछ भी लिखा देते हैं वृद्धावस्था पेंशन के लिए वह उम्र कम रह जाती है। सरपंच खूब प्रयास करता है, फार्म भरवाता है, पर तकनीकी दिक्कत आ जाती है। विधवा पेंशन कुछ महिलाओं को मिलती है।

सरपंच ईमानदार, मेहनती, कर्मठ, संवेदनशील है लेकिन तकनीकी कारणों से काम पूरे नहीं करा पाता। गांव उसके काम-काज से, उससे संतुष्ट है।

सुलेमान खां - पथरोड़ा मेव,
उम्र 47 वर्ष - साक्षर

तरुण भारत संघ से भी मिलने से पहले हमने गांव में जंगल बचाओ समिति बना रखी थी। पेड़ काटने वाले को दण्डित करते थे, शादियों में भात में गांव के नाम पैसा आता था। वह सब पैसा गांव के मुखिया के रूप में मेरे पास था लगभग 7,000/-। गांव वालों ने कहा इस पैसे से गांव का पुराना जोहड़ जो सूख गया है उसे घटवाया जाए। मैं खरखड़ा के ब्रजराज के पास गया सरकारी योजना अपना गांव अपना काम के अंतर्गत जोहड़ के लिए मदद मांगने। ब्रजराज ने मुझे बताया कि सरकारी मदद के बजाय तुम तरुण भारत संघ के पास जाओ। वे तुम्हारा जोहड़ खुदवा देंगे। ब्रजराज ने तरुण भारत संघ से बात की। वहां के कार्यकर्त्ता जगदीश गूजर व गोपालसिंह आकर मौका देख गए, तरीका बता गए, जोहड़ हमने खोदी। फिर बाद में आकर नाप-जोख करके तरुण भारत संघ वालों ने 75% पेमेंट कर दिया। गांव का 25%

अंशदान उसी पैसे से हो गया। गांव ने पूरा श्रमदान दिया पूरा सहयोग किया। तब से मैंने तरुण भारत संघ को जाना। इससे पहले मैं थाने, कचहरी में झूठी गवाहियां पैसा लेकर देता था। तरुण भारत संघ से मिल लेने के बाद मेरा रूपांतरण हो गया। जोहड़ बन जाने के बाद गांव में नालों को रोकने का काम था। इसमें हमने गांव का अंशदान अपने गांव के ट्रैक्टरों को सिर्फ़ डीज़ल देकर काम करवा लिया, इस रूप में किया। तरुण भारत संघ ने अपना हिस्सा दिया। गांव में कुल मिलाकर जोहड़ व बांध नाले रोकने के 5 काम किए गए। 15-16 मेड़बंदी हुई।

मेरे पास 20 बीघा ज़मीन है सिंचित। 3 लड़के, 3 लड़कियां हैं। लड़कियों की शादी कर दी, 2 लड़कों की शादी कर दी। लड़कियों को नहीं पढ़ाया। घर के, पशुओं के, खेत के काम से उनको फुर्सत नहीं मिलती थी। दो लड़के तीनों 8वीं पास हैं। छोटा अभी पढ़ रहा है। वह आठवीं में है। पहले गांव में स्कूल नहीं था अब स्कूल है, पोते-पोतियों को पढ़ायेंगे। हम चाहते हैं लड़कियां पढ़ें, आगे बढ़ें, पर सुविधाएं नहीं हैं। गांव में सभी के बच्चे ज्यादा होते हैं पर अब धीरे-धीरे चेतना आ रही है लोग नसबंदी करा रहे हैं। अधिक बच्चों से लोग खुद परेशान हैं। खेतों का बंटवारा कहां तक करें। अदीस के आधार पर नसबंदी न कराने का तर्क व्यर्थ है। हम क्या-क्या काम अदीस के आधार पर कर रहे हैं ? फिर समय की मांग के अनुसार परिवर्तन करना ही पड़ता है।

तरुण भारत संघ ने गांव में चेतना जगाने का भी काम किया है। हमारे गांव को बहुत लाभ मिला है। अब मैं पूरी तौर पर तरुण भारत संघ के साथ जुड़ा हूं। पिछले कुछ समय से नियमित कार्यकर्ता हूं। जो काम ये करते हैं वह धर्म का काम है। मैंने पहले बहुत पाप किया है। इन्होंने मुझमें चेतना जगाई है। इनके साथ काम करने से मुझे भी पुण्य लाभ मिलता है। जंगल बचाने का काम हम पहले से ही अपने आप करते थे। अब हममें और चेतना आ गई है। आयुर्वेद प्रशिक्षण शिविर में तरुण भारत संघ के वैद्य स्थानीय जड़ी-बूटियों की पहचान कर उनसे उपचार करना गांव वालों को सिखाते हैं। हम भी उनके साथ मदद करते हैं। मैं अपने नए काम व नए जीवन से बहुत खुश, बहुत संतुष्ट हूं। घर वाले भी प्रसन्न हैं। घर की खेत की जिम्मेदारी बच्चे सम्भाल लेते हैं, इसलिए मुझे घर की कोई चिंता भी नहीं है। मेरा जीवन वानप्रस्थी जैसा है।

जुम्मा खां - पथरोड़ा - मेव - उम्र 50 शिक्षा-साक्षर

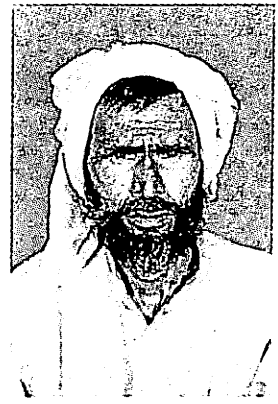

प्रारम्भ से सुलेमान खां से संपर्क। उन्हीं के साथ तरुण भारत संघ से परिचय। गांव में काम कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका। 20 बीघा जमीन, कुआं है, ट्रेक्टर है। 3 लड़के हैं, 3 लड़कियाँ। लड़कियाँ नहीं पढ़ी हैं। एक लड़का नवीं पास है, दो छोटे पढ़ रहे हैं । तरुण भारत संघ से सक्रिय रूप से जुड़े हैं।

गोपालसिंह। 38 वर्ष। राजपूत। गढ़बसई थानागाज़ी।

10वीं तक शिक्षा। संस्था के साथ '87 से। आगे पढ़ाई जारी रखना चाहता था पर खराब स्वास्थ्य के कारण नहीं कर पाया। तब घर में रहकर खेती करना व आसपास के इलाके के सरोकारों से जुड़ना चाहता था। उसी दौरान पता लगा कि गांव के लिए समाज के लिए काम करने वाली तरुण भारत संघ नाम की संस्था है। मैं इसके स्वरूप व कार्य पद्धति के बारे में भी नहीं जानता था।

मैं अपनी रिश्तेदारी में सूरतगढ़ गया, यह सोच कर कि वे पास के गांव में हैं। संस्था के बारे में जानते होंगे। वहां से मैं अपने नाते के भाई सुमेरसिंह को लेकर संस्था में आया। यहां के बारे में जाना। पता लगा संस्था नए कार्यकर्ता जोड़ना चाहती है तो आसपास के गांवों से हम 20-25 लोग यहां कार्यकर्ता के रूप में जुड़ने आए। सूरतगढ़ में हमारी 3 दिन की ट्रेनिंग हुई। उसके बाद कुछ लोग छंट गए। कुल मिलाकर 14-15 लोग

उस ट्रेनिंग के बाद जुड़े। जिसमें से अब हम तीन हैं - मैं, गोवर्धनजी, छोटे लाल मीणा। बाकी छोड़ गए। हमारा क्षेत्र नारायणपुर था। मैं तब से बराबर जुड़ा हुआ हूं। संस्था के बारे में समझने में ज्यादा वक्त लगा क्योंकि हमारा काम श्रमदान से जुड़ा था। उस समय हमें लगा इतना श्रम करके तो हम अपने गांव में ही खूब कमा सकते हैं। पर बार-बार होने वाली मीटिंग, ट्रेनिंग, आदि से धीरे-धीरे हमें श्रमदान का महत्त्व समझ में आने लगा। अब मैं संस्था से व अपने काम से बहुत संतुष्ट हूं। मेरी रुचि तकनीकी कामों में थी। यहां रहकर भी मैंने उसी किस्म के काम किए। उनको और सीखा। बांध जोहड़ का काम इनके विशेषज्ञों से व लोगों से सीखा और उसे आगे बढ़ाने में अपना पूरा योगदान दिया।

शुरू में इस काम को करने में काफ़ी दिक्कतें आयीं। सूरतगढ़ में जब काम शुरू हुआ तो लोग पैसा देने को तो तैयार थे पर श्रमदान को तैयार न थे। उस गांव के सुरजा मीणा के प्रयास से यह काम शुरू हुआ था उसने कहा मैं अकेला क्या कर लूंगा। हमने कहा तुम शुरू तो करो लोग साथ आएंगे। 10-15 दिन उसने अकेले ने श्रमदान किया हम संस्था के कार्यकर्ता भी श्रमदान करते धीरे-धीरे उसके परिवार के लोग आने लगे। महीना बीतते-बीतते सारा गांव आने लगा। काम चल निकला। उसके बाद इस किस्म की परेशानी नहीं आई।

घर की तरफ़ से भी कोई विरोध नहीं है। घर वाले मेरे काम से संस्था से बहुत संतुष्ट हैं, बहुत खुश हैं मेरा एक बेटा व 3 बेटियां हैं। सभी बच्चे पढ़ रहे हैं। बच्चे भविष्य में क्या बनेंगे यह उनकी समझ व मेहनत पर निर्भर करेगा। घर की थोड़ी जमीन है, 4 बीघा लड़का बड़ा होकर उसे सम्भाल सकता है। हम यहां बहुत खुश हैं। यदि कहीं और नौकरी करते तो हमारी चेतना का यह रूपांतरण नहीं हो पाता। हमें लगता है हम बहुत बड़ी चीज से वंचित हो जाते।

निष्कर्ष एवं सुझाव

इन चारों गांवों के अध्ययन से जो निष्कर्ष निकल कर आते हैं, उन पर आंशिक रूप से संतुष्ट हुआ जा सकता है। इन गांवों में एक बुनियादी फर्क नज़र

आता है। वह यह कि पहले दो गांवों में महिलाओं की भागीदारी उल्लेखनीय तथा नेतृत्वकारी रही है जब कि पथरोड़ा और खरखड़ा में सारी भूमिका पुरुषों की रही है। जल, जंगल और ज़मीन के संरक्षण की योजना तब तक टिकाऊ और अर्थवान नहीं बन सकती जब तक कि महिलाओं की बराबर की भागीदारी न हो। बहरहाल, फौरी लक्ष्यों की दृष्टि से देखें तो जो उपलब्धियां हुई हैं, वे आगे की उपलब्धियों का आधार बन सकती हैं बशर्ते उन कार्य-भारों की चिह्नित और पूरा करने की दिशा में अग्रसर हुआ जाये जो महिला सबलीकरण के अनिवार्य अंग हैं। जोहड़ निर्माण से महिलाओं को तीन प्रकार के प्रत्यक्ष लाभ हुए हैं जिन्हें गांव और **तरुण भारत संघ** के साझे प्रयत्नों से बनायी गयी रणनीति के जरिये टिकाऊ बनाया जा सकता है :

(1) जोहड़ निर्माण के काम में बराबरी से अधिक भूमिका का निर्वाह करके महिलाएं घर-परिवार से आगे बढ़ कर साझे सरोकारों से जुड़ी हैं।

(2) महिलाओं की मुखरता बढ़ी है। इन दो गांवों में उनकी नेतृत्वकारी भूमिका भी बनी है जिसे बाहर के लोग भी पहचानने-स्वीकारने लगे हैं।

(3) जोहड़ निर्माण से महिलाओं की चौबीसों घण्टे की यंत्रवत् व्यस्तता में कमी आयी है और उन्हें आराम का समय मिला है। गहराई से देखें, समझें तो पायेंगे कि आराम के बाद कुछ खाली समय बच जाता है जिसके अधिक उपयोगी प्रबंधन की योजनाएं बनायी जा सकती हैं।

महिला सबलीकरण के अन्य आयामों पर ध्यान दिये जाने लायक माहौल जोहड़ निर्माण की प्रक्रिया और उससे होने वाले लाभों के आधार पर बन ही चुका है। इसलिए यह उपयुक्त होगा कि नीचे सुझाये जा रहे कदमों में से कुछ कदम तो तत्काल उठाये जाएं और बाकी को दूरगामी योजना के हिस्से के रूप में नजरों के सामने रखा जाये। यह प्रक्रिया क्रमशः तेज कर दी जा सकती है :

(1) खाली समय के रचनात्मक और प्रसन्नतादायक उपयोग के लिए महिलाओं के लिए दक्षता एवं कौशल विकसित करने के काम शुरू किये जायें।

(2) पारंपरिक दक्षताओं के अभाव की स्थिति में उन्हें संसाधन/उपकरण उपलब्ध करा कर कताई, बुनाई जैसे कामों से जोड़ा जा सकता है। इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण का आयोजन किया जा सकता है। इससे उनमें सामुदायिक जीवन एवं कर्म के प्रति सकारात्मक भाव (जिसके बीज जोहड़ निर्माण के दौरान पड़ चुके हैं) और अधिक सघन होगा। अपने बूते पर कुछ करने और परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में योगदान दे पाने के सुख व संतुष्टि के भाव का भी संचार होगा।

(3) पशुपालन से जुड़े हुए कुछ नये तरह के कामों की शुरुआत की जाये। इसके लिए जरूरी है कि आधारभूत ढांचा तैयार किया जाये।

(4) अनौपचारिक शिक्षा का इतना बंदोबस्त किया ही जाना चाहिए कि उनकी कार्यात्मक दक्षता का विकास हो सके व वे पढ़-लिख पाएं। छोटा-मोटा हिसाब-किताब रख पाएं। मोल-भाव कर पाएं।

(5) स्वास्थ्य के प्रति सचेतनता का भाव विकसित किया जाये जिससे कि वे टाली जा सकने वाली बीमारियों से बचने का उपक्रम कर पाएं।

(6) महिलाओं की व्यापक सहभागिता और निर्णय-क्षमता को बढ़ाने के लिए महिला समितियां गठित की जाएं। समाज में और अधिक **दड़की माइयों** व **चंद्री देवियों** की जरूरत है। परिवार से लेकर गांव तक के हर फैसले में महिलाओं की निर्णायक भूमिका बन पाये तो पानी को केन्द्र में रखकर शुरू किया गया लोक अभियान जमीन और जंगल के रख-रखाव में तो उनकी भूमिका को बढ़ाएगा ही, उन्हें इतना साहसी और निर्भय भी बनाएगा कि उनके जीवन को प्रभावित करने वाली कुटिल राजनीति और भ्रष्ट सरकारी कारिंदों के कुचक्रों को नाकाम करने में वे अग्रणी भूमिका निभा सकेंगी। अगली पीढ़ी को संस्कार देने में भी उनका अमूल्य योगदान संभव हो पाएगा।

(7) **तरुण भारत संघ** को और अधिक महिला कार्यकर्ता खड़े करने चाहिए जो महिलाओं और ग्राम समितियों से निरंतर जीवंत संपर्क बनाये रखकर उनके सुख-दुख में भागीदार हो सकें व जरूरत के मुताबिक मार्गदर्शन कर सकें।

(8) गांव की सहभागिता (जोहड़ों की ही तरह) से सड़क निर्माण का कार्य व वैकल्पिक ऊर्जा का कार्य भी **तरुण भारत संघ** को अपने हाथ में लेना चाहिए। इससे गांव वालों के सड़क के अभाव के कष्ट कम होंगे तथा गोबर आदि का सही सदुपयोग हो पाएगा।

(9) **ग्राम सभाओं में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करवाया जाये। उन्हें महिला मंडलों तक ही सीमित न रखा जाये।** खरखड़ा और पथरोड़ा में सक्रिय महिलामंडल बनाने पर प्राथमिकता के तौर पर ध्यान दिया जाये। संभावनाएं दिखाई पड़ती हैं, पर सुनियोजित प्रयत्न किये बिना सफलता की उम्मीद नहीं की जा सकती। प्रभावी पुरुष कार्यकर्त्ताओं एवं स्वयंसेवकों को अपने घर से पहल करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है जिस पर व्यवस्थित ढंग से ध्यान दिया जाना चाहिए। जोहड़ निर्माण के तात्कालिक और दूरगामी दोनों तरह के अपेक्षित लाभों को कार्ययोजना में सूत्रित किया जाना चाहिए और क्रमिक रूप से उन पर काम किया जाना चाहिए। तभी नये व्यक्तित्व का निर्माण हो पाएगा और पानी का जन-जीवन पर व्यापक असर देखा-अनुभव किया जा सकेगा।

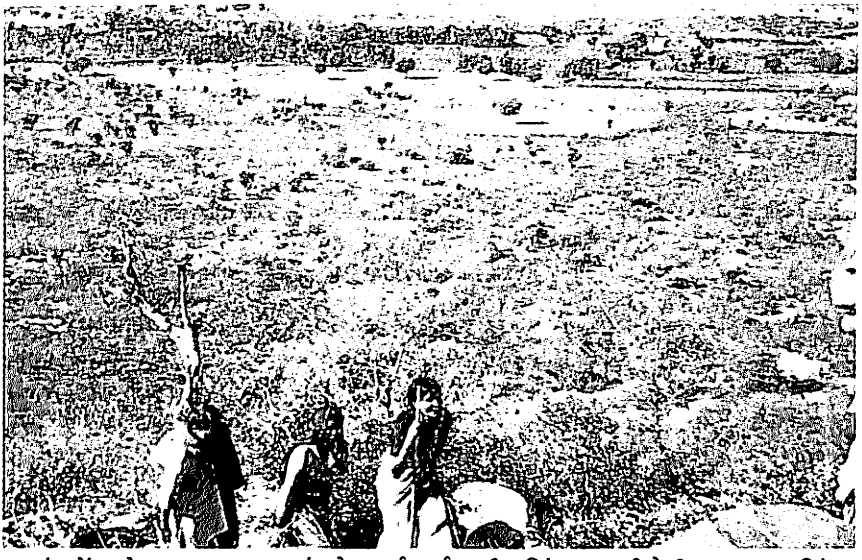

गांव में जाते हुए तरुण भारत संघ के कार्यकर्त्ता - मीनासिंह, कस्तूरी देवी व लक्षमण सिंह

महिलाओं ने पानी समेटा शराब विदा की (एक रिपोर्ट)

राजेश रवि
पत्रकार, अलवर (राज.)

पानी के काम की शुरुआत के साथ ही लोगों को दूसरी बुराइयों से भी मुक्ति की ललक जागी। जहाँ गाँव के पुरुषों ने पढ़ाई-लिखाई से नाता जोड़ने पर अधिक जोर दिया वहीं महिलाओं ने शराब से मुक्ति की बात की। गाँव वाले इस बात से भी प्रसन्न हुए कि हमारी महिलाएं भी किसी अच्छे काम की तरफ सोचने लगी हैं।

महिलाओं ने अपने परिवार वालों को सलाह दी कि जब आप पानी बचाकर अपने को समृद्धि की तरफ ले जा रहे हैं तो फिर शराब से भी मुक्ति हो जाये तो विकास में चार चांद लग जायेंगे। महिलाओं की इस बात को गाँव के पुरुष कुछ अधिक ध्यान नहीं दे रहे थे पर इसे संयोग ही कहेंगे कि बाहर से आई महिलाओं को एक बार गाँव के कुछ लोगों ने छेड़ दिया जो कि शराब पिये हुए थे। इसके बाद तो महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों ने भी कहा कि शराब हमारी बदनामी करवाती है हम अब इस बदनामी से मुक्ति चाहते हैं।

इस कारण सबसे पहले कैखवाल, खरखड़ा, कैखड़ी, निठारी और चौमू के लोगों की एक सामूहिक पंचायत हुई। पंचायत में सभी ने तय किया कि हमारे गाँवों को अब शराब से मुक्त करना है। पाँचों गाँवों के लोगों ने अपने पाँच-

पाँच प्रतिनिधि तय कर दिये। कहा गया कि ये लोग मिलकर नियम तय कर दें उसके बाद हम सभी उनको मानेंगे। इस निर्णय में गाँवों की महिलाओं की भी भागीदारी रही। पथरोड़ा की मुस्लिम महिलाओं ने भी इस कदम में कदम मिलाया।

सभी मुखियाओं ने फिर से बैठक की, कहा गया कि यदि हमारे गाँव में शराब बिकेगी और बनेगी तो इससे मुक्ति संभव नहीं हो पायेगी। आस-पास के इन गाँवों में राजपूत, यादव और जाटव आदि रहते हैं। शुरू में तो गाँव के कुछ बुजुर्गों और नौजवानों को लगा कि यदि शराब बंद हो गई तो फिर काम कैसे चलेगा परन्तु फिर कठोर मन करके नियम बनवाये। सबसे पहले पंचायत ने तीन कानून बनाये। पहला गाँव का कोई भी व्यक्ति शराब नहीं पियेगा जो भी पियेगा उसे ग्यारह सौ रुपया जुर्माना देना होगा। दूसरा नियम यह कि गाँव में जो भी व्यक्ति शराब बनायेगा या बेचेगा उस पर इक्कीस सौ रुपया जुर्माना। किसी दूसरे गाँव से आकर बेचने वाले पर भी यह जुर्माना रहेगा। तीसरा नियम यह बना कि जो भी व्यक्ति गाँव के मुखिया को आकर यह बतायेगा कि फलां व्यक्ति शराब बेच रहा है या पीकर घूम रहा है तो उसे सौ रुपया इनाम स्वरूप दिया जायेगा।

इसके साथ ही तय किया गया कि जो भी राशि इस मद में आयेगी उससे मंदिर का विकास किया जायेगा। कैखवाल गाँव के महेंद्र सिंह ने बताया कि इस नियम को सभी ने स्वीकारा और जुर्माना भी भरते आये हैं। जब गाँव वालों ने अपने कानून बना लिये तो वे शराब ठेकेदार के पास गये व कहा कि अब तुम्हारी बिक्री बंद है इसलिये तुम अपनी दुकान भी यहाँ से उठा लो। गाँव वाले कहते हैं कि जब माल बिकना वास्तव में बंद हो गया तो वे अपनी दुकानें उठाकर चलते बने। जुर्माने के रूप में राशि आने लगी। अब जो राशि एकत्रित है उससे शीघ्र ही मंदिर का निर्माण करवाया जा रहा है। शराब के बंद होने से सबसे अधिक खुश गाँव की महिलाएं हैं। वे कहती हैं कि पहले हमारे पति शराब पीकर हमें मारते-पीटते थे, घर में झगड़े रहते थे पर अब शांति है। मुस्लिम महिलाओं का कहना है कि पिछले एक-सवा साल से हमने आस-पास के भी किसी गाँव में शराब पीकर झगड़ा होने की बात नहीं सुनी।

गाँवों के बच्चे, बूढ़े, जवान और महिलाएं इस काम के लिए तरुण भारत संघ का आभार जताते नहीं थकती हैं।

शराब के अलावा गाँव वालों ने जंगल बचाने के भी नियम बना रखे हैं। वे बताते हैं कि गाँव के मुखियाओं ने तय कर रखा है कि कोई भी व्यक्ति जंगल से लकड़ी काटकर नहीं लायेगा। यदि लायेगा तो उस पर दोगुनी राशि का जुर्माना होगा। वे कहते हैं कि अब होता यह है कि यदि किसी को लकड़ी काटकर लाते देखा जाता है तो उसे रोककर लकड़ियों सहित पंचायत के सामने रखते हैं। पंचायत वाले लकड़ी की कीमत आंकते हैं और काटने वाले को उस कीमत से दोगुनी राशि देनी पड़ती है। कटी हुई लकड़ियाँ उसी को दे देते हैं। यदि वह व्यक्ति कई बार पकड़ा जाता है तो फिर लकड़ियाँ भी जब्त की जाती हैं और जुर्माना भी लेते हैं। पढ़ाई के प्रति भी चेतना जागी है। गाँव वाले बताते हैं कि यदि कोई व्यक्ति जुर्माना नहीं भरता तो उसे निष्कासित कर दिया जाता है जब वह जुर्माना भरता है तभी वापिस गाँव के अन्य लोग उससे लेनदेन करते हैं।

ग्रामवासियों से चर्चा करते राजेन्द्रसिंह, राजेश रवि एवं जिनेश जैन

पानी ने गाँवों की काया पलटी

पानी रोकने के लिये तरुण भारत संघ की मदद से किये गये कार्यों के परिणामों को देखकर लक्ष्मणगढ़ क्षेत्र के करीब आधा दर्जन गाँवों के लोग फूले नहीं समाते हैं। छोटे बच्चे से लेकर बुजुर्ग तक इन कामों को अच्छा बताते नहीं थकते। कहना साफ है कि फायदे भी एक-दो हुए हो तो बताये यहाँ तो बदलाव की लंबी कतार सी लग गई है।

कैखवाल, कैखड़ी, खरखड़ा, निठारी, चौमू और पथरोड़ा जैसे छोटे-छोटे गाँवों का भ्रमण करे तो सारी बात सामने आ जाती है। भरतपुर के एक इंजीनियर एक पर्यावरण विद् और कुछ अन्य साथियों ने जब लोगों से बातचीत की तो सारी बात साफ हो गई।

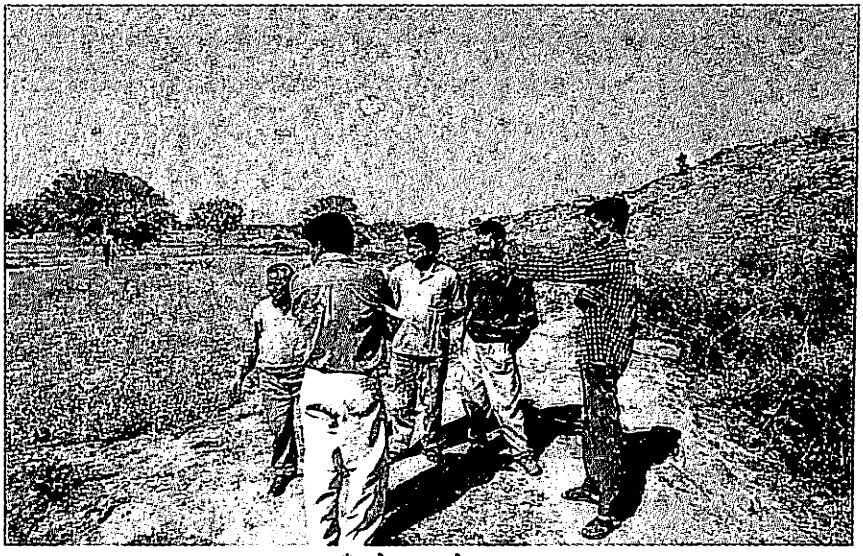

गाँव के बदलते हालात

कैखवाल में जब सैया वाले जोहड़ पर खड़े होकर कुछ विचार-विमर्श चल रहा था तो गोकुल सिंह वहाँ आ गया। उससे पूछा कि इस जोहड़ के बनने का क्या फायदा हुआ तो उसने बताना शुरू किया, पहले पहाड़ से आने वाला पानी हमारे खेत की मिट्टी को काटता हुआ आगे बढ़ता और पूरे गाँवों को साफ

कर देता था पर अब दो-ढाई साल से पानी यहीं पर रुक जाता है इस कारण खेतों की कटान भी रुकी है और गाँव की बर्बादी भी। जब खेत कटते थे तो उन्हें ठीक करने में भारी पैसा खर्च होता था व दो फसलों का भी नुकसान होता था। जब पानी नहीं बरसता तो पानी के अभाव में नुकसान झेलते थे पर अब पानी बरसे तब भी फायदा और यदि कम बरसे तब भी काम चलता है।

इसके पास में नोर्ता हरिजन का खेत भी है। सही मायने में तो यह जोहड़ इस हरिजन के लिये ही वरदान बना है ! गाँव वाले बताते हैं कि इन खेतों में कभी फसल नहीं होती थी पर अब और गाँवों से अच्छी फसल होती है। भंवर सिंह कहता है कि जोहड़ के बनने से मेरा तो पच्चीस बीघा का खेत सुधर गया।

चूडसिद्ध वाला जोहड़ में अब बारह मास पानी रहने लगा है। गाँव के लोग, पानी बचाने के काम में किस तरह से जुड़े हैं इसका उदाहरण है प्रहलाद सिंह। गाँव का आदमी था, चढ़ाई पर ट्रैक्टर आदि चलाने का ज्यादा अनुभव नहीं था इस कारण जोहड़ पर मिट्टी चढ़ाते समय चार बार उसका ट्रैक्टर उलटा पर उसने पीछा नहीं छोड़ा, आज भी वह पूरी मेहनत के साथ जोहड़ बनाने के काम में जुड़ा हुआ है। गाँव का एक बुजुर्ग, युवाओं को जोहड़ बनाने की प्रेरणा देते समय कहता है कि जिन लोगों के हाथ पैर टूट जाते हैं वे भी गिर्राज जी की परिक्रमा करने जाते हैं और पूरा भी करते हैं तो फिर हमारे पास तो हाथ-पैर सब हैं हम क्यों जोहड़ नहीं बना सकते। वह कहता है कि हमने थ्रेसर खरीदा था सौ रुपये का काम किया और मैं वापिस आ गया क्योंकि मेरे पास सूचना पहुँची कि जोहड़ पर ट्रैक्टर की जरूरत है। गाँव के लोग कहते हैं कि हमें तीन चीजें ही चाहिए। अन्न, जल व धर्म। इसमें यदि हम जल बचा लेंगे तो बाकी दो चीजें अपने आप ही मिल जायेगी।

खरखड़ा गाँव में सरपंच ब्रजराज वोटों की राजनीति से ऊपर गाँव के विकास कार्य में जुड़े हैं। अपने घर का काम छोड़कर भी वे जोहड़ बनाने के काम में जुटे रहते हैं। गाँव वाले यह मानने लगे हैं कि सरपंच कामों में कभी भेदभाव नहीं बरतता है। उसके बाद चौमू गाँव देखा जहाँ पर भी तरुण भारत संघ ने कई जोहड़ बनवाये हैं। इस गाँव में जोहड़ बनाने वाले लोग तो मजदूरी करने व अपने अन्य काम-काज करने बाहर गये हुए थे पर कुछ और लोग मिले उनसे बातचीत हुई।

गाँव वालों ने बताया कि जोहड़ बनाने का चौथा हिस्सा देते हैं शेष राशि संस्था से लेते हैं। पथरोड़ा गाँव में बम्मल मेव ने कहा कि जोहड़ों ने तो हमारे तैलीय पानी की तासीर बदल दी। जहाँ पहले घास नहीं उगती थी अब वहाँ फसल होती है। वे कहते हैं कि पचास साल हो गये देश को आजाद हुए और नेताओं से हम कह कहकर थक गये कि हमारे रास्ते के कटान को रोकने का कोई इंतजाम कर दो पर किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया। अब जब कि यह संस्था काम करने लगी है तब हमें लगने लगा है कि पानी रोककर तो सारी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। गाँव का एक नौजवान कहता है कि पहले बड़ौदा मेव से कच्चे रास्ते की टूटी-फूटी पगडंडियों के अलावा और कोई रास्ता गाँव तक आने का नहीं था उस पर से पैदल ही आना-जाना पड़ता था परन्तु अब जबसे रास्ते से मिट्टी का कटान रुका है तब से खाट खूंटेटा होते हुए एक बस भी यहाँ पर आने लग गई है जिससे हमें पैदल धक्के नहीं खाने पड़ते। जो स्पष्ट रूप से असर साफ नजर आने लगा है उसमें यह भी है कि कुंओं का जलस्तर काफी ऊँचा हो गया है। पहले जहाँ नब्बे हाथ की रस्सी से पानी खींचा जाता था अब वहाँ चालीस-पचास फीट की रस्सी से ही काम चल जाता है।

खेत पर पानी देने वाले इंजनों से पहले पानी कुछ समय बाद ही टूट जाता था पर अब पानी नहीं टूटता है। पानी जो खारा था वह अब मीठा भी हुआ है। अब एक ही जगह पर रुपारेल नदी में चार-चार इंजन पानी खींच रहे हैं। फिर भी नदी में पानी लगातार बह रहा है।

अब तक प्रकाशित हमारे प्रकाशन

1.	लोक परंपरा से मिला रास्ता	:	राजेन्द्र सिंह
2.	लोगों के जोहड़	:	राजेन्द्र सिंह
3.	ग्राम स्वावलम्बन की दिशा में	:	राजेन्द्र सिंह
4.	जलागम विकास के आयाम	:	राजेन्द्र सिंह
5.	सबको सहेजने का संघर्ष	:	अरूण कुमार त्रिपाठी
6.	ग्राम स्वराज की राह पर	:	(तभास के कार्यों पर सर्व सेवा संघ का प्रकाशन)
	भांवता-कोल्याला	:	राजेश रवि-जिनेश जैन
7.	साझे श्रम का कमाल : बाघ की दहाड़ और समाज की खुशहाली	:	राजेश रवि-जिनेश जैन
8.	भारतीय आस्था एवं पर्यावरण रक्षा	:	राजेन्द्र सिंह
9.	बाढ़ : विनाश से मुक्ति का एक अध्ययन	:	राजेश रवि-जिनेश जैन
10.	Story of a Rivulet Aravari	:	Jashbhai Patel
11.	Rejuvenating the Ruparel	:	Vir Singh
12.	फिर से बहने लगी रूपारेल	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
13.	सरस गयी सरसा	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
14.	अरवरी नदी के पुनर्जन्म की कथा	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
15.	जी उठी जहाजवाली नदी	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
16.	सम्मान का पानी लानेवाली : भगाणी-तिलदेह नदी	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय-अविनाश
17.	अरावली के आँसू	:	रमेश थानवी व राजेन्द्र सिंह
18.	अरावली का सिंहनाद	:	रामजन्म चतुर्वेदी
19.	धराड़ी नये संदर्भों में	:	प्रो. मोहन श्रोत्रिय
20.	Regenerating the Forest : the TBS Way	:	Prof. Mohan Shrotriya

पहला संस्करण - मई 1998

पानी का आराम : दड़की माई गांव में

महिलाओं की सक्रिय भागीदारी

तरुण भारत संघ

भीकमपुरा-किशोरी, थानागाजी, अलवर-301 002

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर • रु. 21/-